विज्ञान और दर्शन

एम एन राय
की वाग्देवी से प्रकाशित अन्य कृतियाँ
साम्यवाद के पार
नव मानववाद

वाग्देवी पॉकेट बुक्स मे
इस्लाम की ऐतिहासिक भूमिका
हमारा सास्कृतिक दर्प

वाग्देवी प्रकाशन, बीकानेर

विज्ञान और दर्शन

एम एन. राय

अनुवाद

नन्दकिशोर आचार्य



वाग्देवी प्रकाशन
सुगन निवास चन्दनसागर
बीकानेर 334001

प्रथम संस्करण 1999

मूल्य पचानबे रुपये मात्र

मुद्रक साखला प्रिण्टर्स
सुगन निवास चन्दनसागर
बीकानेर 334001

ISBN 81 85127 95 6

VIJNANA AUR DARŠANA *(Science And Philosophy)* by M N Roy
Translated by Nand Kishore Acharya

Rs 95 00

आमुख

शिक्षा के अभिनन्दनीय विस्तार ने आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के प्रसार में बहुत योगदान किया है। अणु इलेक्ट्रॉन, ऊर्जा का क्वाटम, तारा-मडल, सर्पिल नीहारिकाएँ, चयापचय, तत्त्वान्तरण, सहजीवन, जीवात्जीवोत्पत्ति, कोशिका जीन, गुणसूत्र, ग्रन्थि, यौगिकीकरण अनुबन्धित प्रतिवर्त अवचेतन लिबिडो—ये सब एव अन्य बहुत से पद औसत शिक्षित लोगों की दैनन्दिन बातचीत में मुक्त भाव से प्रयोग में लिये जाते हैं। अधिक महत्त्वाकाक्षा लोग गणित की अधिक दुर्बोध भाषा में भी खलते हैं। लोकप्रिय वैज्ञानिक लेखन मात्रा में प्रतिदिन बढ़ता हा जाता है। लकिन वैज्ञानिक ज्ञान का यह अभिनन्दनीय विकिरण कोई अमिश्रित वरदान नहीं रहा है। कुल मिला कर, तात्कालिक परिणाम अनभ्यस्त बढ़िया खाने से उत्पन्न अपच जैसा हो है।

कुछ प्रमुख वैज्ञानिकों के लोकप्रिय किन्तु मूल्यवान ग्रन्थ सरलीकृत ज्ञान के प्रसार के बजाय दार्शनिकीकरण की ओर उन्मुख हैं। उन्होंने कुछ ऐसा प्रभाव बनाया है मानो विज्ञान, और विशेषतया भौतिकी के नवीनतम विकास ने विज्ञान और अन्धविश्वास के बीच चल रहे युगों पुराने सघर्ष का निर्णय अन्धविश्वास की जीत के रूप में कर दिया

है। एडिंग्टन जीन्स और वैज्ञानिक ज्ञान के दार्शनिकीकरण वाले लोकप्रिय बनाने वाले किसी अन्य वैज्ञानिक की पुस्तक को पढ़ने पर औसत व्यक्ति दर्शन की विवादास्पद समस्याओं पर प्रामाणिक मुद्रा के साथ बहस करने लगता है। ऐसी दशा में भ्रान्ति पैदा होना अनिवार्य है।

पूर्वनिर्धारित पराभौतिक धारणाओं के साथ लोकप्रिय वैज्ञानिक लेखन को पढ़ने वाले लोगों का उद्देश्य अपने ज्ञान का विस्तार नहीं बल्कि आधुनिक वैज्ञानिक शोध के दार्शनिक निहितार्थों के बारे में विनतापूर्वक बातचीत करना होना है। दार्शनिकीकरण वाले वैज्ञानिकों की लोकप्रिय पुस्तकें सामान्यतः विज्ञान की किसी विशेष शाखा भौतिकी या जीवविज्ञान अथवा मनोविज्ञान आदि से सम्बन्धित होती हैं। वे एकपक्षीय चित्र ही प्रस्तुत कर पाती हैं। आधुनिक वैज्ञानिक शोध के परिणामों से निष्पक्ष दार्शनिक निष्कर्षों के लिए वैज्ञानिक ज्ञान की समग्रता के समाकलित दृश्य का सामान्य ज्ञान आवश्यक है। आधुनिक वैज्ञानिक शोध की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह उद्घाटन है कि विज्ञान की विभिन्न भौतिकीय अथवा जीववैज्ञानिक शाखाओं के अन्वेषण एक सर्वनिष्ठ मिलन बिन्दु की ओर अभिमुख हैं। आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के मिलन बिन्दु की प्रकृति को ले कर विभिन्न मत हो सकते हैं। लेकिन बहुश्रुत ज्ञान के अभाव में किसी मत को गम्भीरता से नहीं लिया जा सकता। फिर भी दार्शनिक पूर्वग्रहों से ग्रस्त वैज्ञानिकों की इस या उस लोकप्रिय पुस्तक के आधार पर आधुनिक वैज्ञानिक शोध के दार्शनिक निहितार्थों के बारे में हठधर्मी मत मुक्त भाव से अभिव्यक्त किये जाते हैं।

वैज्ञानिक ज्ञान के व्यावहारिक प्रयोग ने निस्सन्देह काफी हानि पहुँचायी है। विषैली गैस और अणुबम के अतिरिक्त तकनीकी भी कोई अमिश्रित वरदान नहीं रही है। इसीलिए हम विज्ञान द्वारा निर्मित फ़्रैंकस्टाइन को ले कर इतना विलाप सुनते हैं। विज्ञान का कार्य केवल प्रकृति पर विजय नहीं बल्कि प्रकृति और उस से अपने सम्बन्धों के साथ-साथ प्रकृति के ही अंश अन्य मनुष्यों से भी सम्बन्धों को समझने में सहायक होना है। दूसरे शब्दों में, वैज्ञानिक ज्ञान का दार्शनिक निहितार्थ भी होता है। वस्तुतः, सभ्यता के उष काल से ही विज्ञान और दर्शन अन्तर्ग्रथित हैं।

आधुनिक तकनीकी प्रवृत्तियाँ मानवता को मोलोक की वेदी पर बलि चढ़ाने और अपने ही निर्माता को नष्ट करने वाले फ़्रैंकस्टाइन के निर्माण का खतरा पैदा कर रहे हैं क्यों कि विज्ञान के व्यावहारिक उपयोगितावादी मूल्य को उस के आदर्श मूल्य शुद्ध चिन्तन को उस के योगदान को ग्रस लेने की छूट मिल गयी है जो मनुष्य को विवेकशील और नैतिक व्यवहार के योग्य बनाता और उचित अनुचित सत्य असत्य अच्छे बुरे का निर्णय करने की कसौटी प्रदान करता है।

इसलिए आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के दार्शनिक निहितार्थ को स्पष्ट करने का अत्यधिक सांस्कृतिक महत्त्व है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए तकनीकी ब्योरों और अकादमीय

दुर्बोधताओ से मुक्त आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान का एक समाकलित चित्र अत्यन्त आवश्यक है। ऐसे कुछ विश्वकाशाय ग्रन्थ हैं। लेकिन वे एक ओसत व्यक्ति के लिए वहुत पाण्डित्यपूर्ण हैं।

आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान और शुद्ध चिन्तन को उस के यागदान को समग्रता के साथ एक औसत शिक्षित व्यक्ति को समझा सकने वाली एक पुस्तक की जरूरत को पूरा करने के लिए मैं ने कारागार-प्रवास की लम्बी अवधि का लाभ उठाया। कारावास में लिखे जाने के कारण पाण्डुलिपि में कुछ दोष थे। कुछ सामग्री कारागार मे नहीं मिल सकी थी जिसे उपलब्ध कर के पाण्डुलिपि को पूरा करना था। तथापि पाण्डुलिपि का अधिकाश प्रकाशन के लिए काफी पहल ही तैयार था। लेकिन युद्ध ने हस्तक्षेप किया। तीन भागों में कई सहस्र पृष्ठों की पुस्तक के लिए तकनीकी परिस्थितियाँ अब भी अनुकूल नहीं हैं। उस में अभी भी कुछ विलम्ब होगा। लेकिन उस के शीघ्र प्रकाशन के लिए बहुत अधिक दबाव है। आशा है कि उस विशाल ग्रन्थ के प्रकाशन तक उस का यह एक प्रकार का साराश मांग को सन्तुष्ट कर सकेगा।

मैं ने इस पुस्तक में आधुनिक वैज्ञानिक शोध द्वारा प्रस्तुत दार्शनिक समस्याओं को निरूपित किया, और उन के प्रति निष्पक्ष तर्कबुद्धिनिष्ठ अभिगम का सकेत दिया है। एक विशाल ग्रन्थ का साराश होने के कारण यह पुस्तक स्वभावत उस में विकसित सिद्धान्त की रूपरेखा है जिस के शीघ्र प्रकाशन की अब मैं आशा कर सकता हूँ। इस बीच इस पुस्तक से एक बहुश्रुत विचार-विमर्श को प्रेरित करने की आशा की जाती है।

देहरादून, —एम एन राय
1 सितम्बर 1947

अनुक्रम

अध्याय एक

प्रवेश

एक मामान्य शिक्षित व्यक्ति के लिए दर्शन शब्द का अर्थ बहुत अस्पष्ट किन्तु उम का व्यवहार बहुत व्यापक होता है उस का प्रयोग केवल परिकल्पनात्मक चिन्तन के लिए ही नहीं काव्यात्मक कल्पना के लिए भी होता है। विशेषतया भारत में यह अस्पष्ट सर्वसमावेशा अथ हा सामान्यत प्रचलित है। दर्शन को धर्म और धर्मशास्त्र स पृथक् *नहीं समझा जाता। भारतीय दर्शन का एक विशिष्ट लक्षण निश्चय हा यह माना जाता* है कि वह मध्यकालीन परम्परा से उस तरह विच्छिन्न नहीं हुआ जिस तरह सत्तरहवीं शताब्दी में पश्चिमी दर्शन हो गया।

स्वाभाविक है कि विश्वास पर आधारित दार्शनिक सिद्धान्तों को उन की अदार्शनिक प्रकृति के कारण वैज्ञानिक ज्ञान की कसौटी पर नहीं परखा जा सकता। सच तो यह है कि ऐस सिद्धान्त इस प्रस्ताव को ही अस्वीकार कर देते हैं कि उन पर वैज्ञानिक ज्ञान

की कसौटा लागू की जा सकती है। इसलिए उन की परख तर्क के आधार पर हा हो सकती है। विश्वास का अपना तर्क हाता है और धार्मिक दर्शन की आलाचना का काम उस तर्क की भ्रामकता का स्पष्ट कर देना है। उदाहरणार्थ ईश्वर के प्रत्यय को लें। यह प्रत्यय इस विश्वास से पैदा होता है कि कभा इस दुनिया की सृष्टि हुई थी, और कोई भा सृष्टि स्रष्टा के बिना सम्भव नहीं है। भौतिकीय शोध ने सृष्टि के सिद्धान्त को ध्वस्त कर दिया है और इस के परिणामस्वरूप वैयक्तिक अथवा निर्वैयक्तिक ईश्वर का प्रत्यय अतर्कसगत हा गया है। लेकिन एक आस्तिक विज्ञान के साक्ष्य और प्राकृतिक दर्शन की दलालों की अनदेखा कर सकता है। हमें उस का मुकाबला उसा के मैदान पर करना है। हमें उस के विश्वास के आधारभूत तर्क की भ्रामकता को प्रदर्शित करना होगा।

ईश्वर में विश्वास का भी एक तार्किक आधार है। यह विश्वास आदिम मनुष्य की सृष्टि के कारण की तलाश का परिणाम है। ईश्वर को सृष्टि के कारण के रूप में देखा जाता है। यदि प्रत्येक वस्तु के पीछे किसी कारण का होना अनिवार्य है तो यह प्रश्न भा उतना हा स्वाभाविक है कि ईश्वर का स्रष्टा कौन है। धर्म का प्रचलित उत्तर कि ईश्वर अनादि है साध्य को सिद्ध मान कर तर्क करता है। मूल कारण की तलाश का अर्थ प्रश्नों के पश्चगामी अनन्त में जा गिरना है। कोई अनिवार्यता नहीं कि हम ईश्वर को ही मूल कारण मान लें। ऐसा करने का मतलब इस मान्यता का परित्याग होगा कि प्रत्येक वस्तु के पीछे कोई कारण होता है। एक बार किसी वस्तु के आत्मसम्भवा होने को स्वीकार कर लेने पर—जो कि ईश्वर को मूल कारण मान लेने पर होता है—यह मानने में भी कोई वैध आपत्ति नहीं हो सकती कि यह विश्व आत्मसम्भव है, कि इस की कभी सृष्टि नहीं हुई कि यह अनादि है। प्रकृति में हा प्राकृतिक क्रियाओं के नियम जान कर विज्ञान ने क्रमश इस तर्कसगत धारणा को पुनर्बलित किया है। इस प्रकार, ईश्वर में विश्वास के विनाश का बीज उस के अपने तार्किक आधार में ही अन्तर्निहित है। यह विश्वास विज्ञान के साक्ष्य और प्राकृतिक दर्शन की दलीला की अनदेखी कर सकता है लेकिन स्वय अपने ही उस तर्क की कसौटी पर खरा नहीं उतरता जो इसे अनन्त कारणों की साघातिक भ्रामकता में धकेल देता है।

इस पुस्तक का प्रयाजन इस या उस प्रकार के दर्शन की आलोचना करना नहीं है। इस का उद्देश्य आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्तों से दार्शनिक निष्कर्ष बरामद करना है। यदि हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि आधुनिक वैज्ञानिक शोध प्रकृति के एक रहस्यवादी आध्यात्मिक विचार की पुष्टि नहीं करता तो धार्मिक दर्शन अनिवार्यत खारिज हो जायेगा। नव अध्यात्मवाद को धार्मिक दर्शन का समर्थक माना जाता है यद्यपि उस के मसीहा इतनी दूर जाने का इरादा नहीं रखते हैं।

अतिप्राकृतिक में विश्वास प्रकृति के घटना चक्र के कारणों की तलाश की अनुमति नहीं देता। इसलिए रूढ़ धार्मिक विचारों और धर्मशास्त्रीय मतवादों का अस्वीकार दर्शन की

आवश्यक शर्त है। सत्तरहवीं और अठारहवीं सदियों में प्राकृतिक विज्ञानों के विकास ने आधुनिक पश्चिमी दर्शन को अन्धविश्वासपूर्ण धार्मिक मतों और धर्मशास्त्रीय सैद्धान्तिकी के प्रभुत्व को नकारने के योग्य बना दिया। आधुनिक भौतिकीय शोध द्वारा विश्व के रहस्यवादी-आध्यात्मिक विचार की पुष्टि की धारणा को स्वीकार कर लेने का तात्पर्य यह होगा कि धर्म के विरुद्ध अपने ऐतिहासिक संघर्ष में विज्ञान पराजित हो गया है। शास्त्रीय रूप में प्रत्ययवाद को पुनर्जीवित नहीं किया जा सकता। इसलिए नव-अध्यात्मवादी शास्त्रीय प्रत्ययवाद का बचाव नहीं करते। वे एक रहस्यवादी धारणा रखते हैं प्रकृति अज्ञातगम्य है, यह जानना असम्भव है कि भौतिक जगत वास्तव में क्या है वस्तुजगत की प्रकृति को जान पाना हमारे सामर्थ्य से परे है। इस का तात्पर्य यह है कि आधुनिक भौतिकीय शोध अतिप्राकृतिक में विश्वास की ओर लौटने के लिए बाध्य करता है। शास्त्रीय प्रत्ययवाद भी इतना दूर नहीं जाता क्योंकि धार्मिक अन्धविश्वासों और धर्मशास्त्रीय मतवादों के विरुद्ध विद्रोह से उपजा होने के कारण वह तर्कबुद्धिवाद पर आधारित है। अपना काम करने के लिए दर्शन को धर्म से सम्बन्ध-विच्छेद करना भौतिक ब्रह्माण्ड की वास्तविकता से आरम्भ करना और भौतिकवाद की ओर अग्रसर होना होगा। इसलिए विश्व का रहस्यवादी विचार दर्शन का खण्डन है। वह दर्शन को समाप्त करता और विश्वास को पुनर्जीवित करता है।

यदि वैज्ञानिक शोध हमें विश्व के रहस्यवादी विचार को मानने के लिए वास्तव में बाध्य करता है तो दर्शन को अपने पुराने व्यवसाय की ओर लौटना होगा—अर्थात् भौतिक दृश्यमानता के पीछे आध्यात्मिक वास्तविकता की परिकल्पना, एक आधारभूत विश्वात्मा और वैयक्तिक आत्माओं से उस का सम्बन्ध-विधान तथा उन सब समस्याओं के बारे में चिन्तन जिन्हें अपने भौतिक अस्तित्व से बाधित होने के कारण मनुष्य कभी नहीं सुलझा सकता। तब मानव अस्तित्व का आदर्श पुनः एक असम्भव—ससीम द्वारा असीम की सिद्धि—को सम्पादित करना होगा। यदि यह सच है कि विज्ञान ने प्राकृतिक घटना-चक्र की व्याख्या को अज्ञेय कारणों को माने बिना असम्भव समझ लिया है तो दर्शन को अपने स्वभाव से ही असमाधेय समस्याओं पर व्यर्थ परिकल्पनाओं के दलदल में पुनः धंसना होगा। अतिप्राकृतिक शक्तियों में विश्वास को पुनर्जीवित करना होगा। धर्म को सर्वोच्च सत्ता के उस के पुराने आसन पर पुनः प्रतिष्ठित किया जायेगा। अतिप्राकृतिक के साकार रूप ईश्वर के बारे में परिकल्पनात्मक चिन्तन सर्वोच्च बौद्धिक व्यवसाय होगा। लेकिन इसके विपरीत, यदि यह पता चलता है कि नव अध्यात्मवाद आधुनिक वैज्ञानिक शोध का अनिवार्य परिणाम नहीं है तो यह मानना होगा कि धर्म और विज्ञान के बीच ऐतिहासिक संघर्ष का परिणाम विज्ञान की विजय है। धर्म और विज्ञान, अन्धविश्वास और विवेक तथा विश्वास और ज्ञान के बीच ऐतिहासिक युद्ध को उन देशों में लड़ा जाना शेष है, जहाँ यह अभी तक लड़ा नहीं गया है।

र्शन की आधारभूत समस्या दर्शन को परिभाषित करता है। उस जीवन के सिद्धान्त के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। हम उस की परिभाषा को एक अन्य प्रकार से भी सूत्रबद्ध कर सकते हैं दर्शन का कार्य ब्रह्माण्ड के रहस्य को सुलझाना है। दर्शन जीवन का सिद्धान्त है क्योंकि उस का जन्म प्रकृति की व्याख्या और परिवेश के सन्दर्भ में अपने अस्तित्व को समझने के मानवीय प्रयासों से हुआ है जीवन की वास्तविक समस्याओं को अतीत के अनुभवों के प्रकाश में सुलझाने से ताकि वह समाधान उसे भविष्य की एक प्रेरक झलक दे सके। इन प्रयासों की शुरुआत मनुष्य के सोचना शुरू करने के साथ ही हो गयी। कालान्तर में अपने भौतिक अस्तित्व की आवश्यकताओं से उसे प्राकृतिक घटना चक्र के कारणों की तलाश की अनिवार्यता के रू ब रू होना पड़ा ताकि वह उन्हें समय पर क्रमशः नियन्त्रित कर सके। जीवन स्वयं ब्रह्माण्डीय विकास का परिणाम है। इसलिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय विन्यास की पर्याप्त समझ के प्रकाश में ही जीवन के एक विशेष सिद्धान्त मनुष्य के सम्भवन की तर्कसम्मत व्याख्या उस के वर्तमान अस्तित्व और भावी परिदृश्य को निरूपित किया जा सकता है। इसलिए प्रकृति और जीवन के सभी पहलुओं का समावेश कर सकने वाले विशद दर्शन को एक ब्रह्माण्डिकी पर आधारित होना होगा।

दर्शन धर्म से पुराना है। वह उतना ही पुराना है जितना प्राज्ञ मानव। मनुष्य के बौद्धिक विकास के क्रम में तर्क विश्वास का पूर्वगामी है। सहज बुद्धि तर्क का आदिम रूप है, बौद्धिक विकास के एक परवर्ती स्तर पर वह अब भी उस तार्किकता का स्वचालित, शरीर-वैज्ञानिक कार्य है जो स्वयं उच्चतर अवयव-संस्थान का जैविक गुणधर्म है। अपने अल्पविकसित रूप में उसे उच्चतर पशुओं में भी पाया जा सकता है।

पशु मनोविज्ञान का हमारा ज्ञान अभी बहुत अपर्याप्त है। इस के बावजूद, ऐसा संकेत करने वाला पर्याप्त जानकारी मिल चुकी है कि उच्चतर पशुओं की मानसिक बनावट में विश्वास का कोई स्थान नहीं है जब कि बुद्धि और भावना उन में स्पष्टतया देखी जा सकती हैं। जैविक विकास के क्रम में एक कदम आगे आदिम मानव में भी हम विश्वास का अभाव पाते हैं। प्रचलित धारणा के विपरीत ईश्वर और आत्मा में विश्वास मानव-चेतना में अन्तर्निहित नहीं है। अतिप्राकृतिक में विश्वास करना मनुष्य का स्वभाव नहीं है। नृवैज्ञानिक शोध ने इस समादरणीय उक्ति को निश्चित तौर पर नकार दिया है। आदिम प्रजातियों में ईश्वर और आत्मा से सम्बन्धित धारणाएँ अनुपस्थित हैं। धर्म के प्राचीनतम रूप—जीववाद—का पूर्वगामी रूप जादुई-शक्ति में विश्वास है और जादू अतिप्राकृतिक में विश्वास की नुमाइन्दगी नहीं करता। वह चमत्कार नहीं है। जादू में विश्वास निश्चयवाद का अत्यन्त आद्य रूप है—एक नियम-संचालित व्यवस्था के रूप में प्रकृति की अत्यन्त अनगढ़ अवधारणा जिस में परिणाम कारणों के अनुगामी होते हैं। निश्चयवाद के अनगढ़ रूप जादू में विश्वास के रूप में व्यक्त तर्कयुक्त सहजबुद्धि ने मनुष्य को प्राकृतिक कार्य-व्यापार के कारण की तलाश के लिए प्रेरित किया। आध्यात्मिक विकास के प्रारम्भिक स्तरों में इस मान्यता के स्पष्ट प्रमाण मिलते

हैं कि प्रत्येक बात के पीछे कोई कारण अनिवार्य है। यह मान्यता दर्शन के साथ साथ विज्ञान की भी जननी है।

आधुनिक विज्ञान के विकास ने मनुष्य को प्रकृति के नियमों से क्रमशः परिचित करवाया। परिणामस्वरूप, दर्शन इस ब्रह्माण्ड को एक आत्मोद्भूत और स्वतः पूर्ण व्यवस्था के रूप में ग्रहण करने और समझने में समर्थ हो सका। अब प्रकृति की व्यवस्था की व्याख्या के लिए—ब्रह्माण्ड की गुत्थी के किसी सत्याभासी समाधान के लिए—किन्हीं अतिप्राकृतिक शक्तियों को मान्यता देना आवश्यक नहीं है।

किसी दार्शनिक उद्देश्य की पूर्ति करने तक धर्म भी एक बौद्धिक और नैतिक आवश्यकता है। धर्म का दार्शनिक मूल्य उस के तर्कबुद्धिवादी बीजकोष में है। अतिप्राकृतिक में विश्वास बौद्धिक विकास की रोगात्मक अवस्था का एक लक्षण है। मानव-बुद्धि को जैसे ही सामान्य विकास के लिए अनुकूल हालात मिलते हैं, वह विश्वास की रोगात्मक अवस्था से उबर आती है। विज्ञान द्वारा धर्म की पराजय धर्म के तर्कबुद्धिवादी बीजकोष का युक्तियुक्त परिणाम है। इस पराजय के परिणामों से बचने, या एक हारी हुई लड़ाई को खींचते चले जाने के लिए धर्म को अपने तर्कबुद्धिवादी बीज की अनदेखी करना होगी। तात्पर्य यह कि आधुनिक विज्ञान के उत्थान के बाद धर्म के अस्तित्व के लिए दी जाने वाली सभी दार्शनिक युक्तियों का लोप हो गया है। अतिप्राकृतिक में विश्वास के लिए विवश करने वाली परिस्थितिगत प्रतिकूलताओं से उबरते ही मनुष्य विचार की धार्मिक पद्धति का अतिक्रमण करने को बाध्य है। यदि मनुष्य के आध्यात्मिक विकास के एक दौर में विचार की धार्मिक प्रणाली एक बौद्धिक और नैतिक आवश्यकता है तो उस के बौद्धिक विकास के क्रम में सहज तर्कबुद्धि के रोगात्मक लक्षणों को प्रकट करने के कारण एक दूसरे दौर में उस विचार-प्रणाली का लोप भी उतना ही आवश्यक है।

विज्ञान द्वारा धर्म का संहार तय है क्यों कि वैज्ञानिक ज्ञान मानव-जाति को उन सवालों का उत्तर देने में समर्थ बनाता है जिन का अपने बचपन में सामना करने पर वह अतिप्राकृतिक शक्तियों या अभिकरणों को मानने के लिए बाध्य हो गयी थी। यदि इस मान्यता ने वास्तव में प्रश्नों के उत्तर दे दिए होते तो धर्म ने विज्ञान को प्रतिबाधित कर दिया होता। लेकिन धर्म प्राकृतिक कार्य-व्यापार की व्याख्या नहीं कर पाया। उस ने समस्याओं का एक नया समूह पैदा कर दिया जिस ने अस्तित्व की मूल समस्याओं को ही धूमिल कर दिया। अतिप्राकृतिक शक्तियों में विश्वास से प्राकृतिक कार्य-व्यापार का एक बार सुविधापूर्वक हल पा लेने पर मनुष्य का ध्यान उन काल्पनिक सत्ताओं की प्रकृति और व्यवहार की ओर जाना स्वाभाविक ही था। वास्तविक अस्तित्व की मूल समस्याएं विश्लेषित नहीं हुईं उन्हें एक ओर धकेल दिया गया, और परिणामस्वरूप उन का समाधान असम्भव हो गया। लेकिन समस्याएं बनी रहीं। वे मानव अस्तित्व की समस्याएं हैं। धर्म ने न केवल उन्हें हल नहीं किया बल्कि ईश्वर की प्रकृति आत्मा

आदि तात्विक समस्या की ओर मनुष्य का ध्यान जाना इन मूल समस्याओं के समाधान का काम धर्म के लिए प्रतिबाधित कर दिया।

आधुनिक विज्ञान का स्वरूप मानव प्रकृति के आधारभूत गुण—जिज्ञासा की भावना—पर आग्रह का प्रतिनिधित्व करता है। यह मानव अस्तित्व में अन्तर्निहित है। मनुष्य प्रकृति का विशिष्ट परिणाम ही तो है। उसका भाग ही उसे भौतिक पर्यावरण के सम्पर्क में लाता, उसे क्रियाशील होने के लिए बाध्य करता और उस का ज्ञान प्राप्त करने की एषणा जगाता—उसे इस ज्ञान की आवश्यकता के प्रति सक्रिय बनाता है। निश्चय ही अपने भौतिक पर्यावरण का आरम्भिक ज्ञान तो उसे जैविक आवश्यकताओं से स्वतः ही हो जाता है। इस प्रकार मानवीय विकास के नियम ही वैज्ञानिक विकास के निर्धारक हैं। इसलिए विज्ञान का फैसला दर्शन के लिए बाध्यकारी माना जाना चाहिए। एक समय तक दर्शन का अगुआ रूप होने के कारण धर्म को भी विज्ञान के फैसले के आगे सर झुका देना चाहिए।

मनुष्य का आध्यात्मिक विकास क्यों और कैसे के सवालों के उत्तर देने के प्रयासों का परिणाम है। सामान्यतः यह माना जाता है कि विज्ञान का सरोकार दूसरे सवाल से है जब कि दर्शन का पहले से। यदि पहले सवाल का आशय यह है कि विश्व क्यों है तो यह दर्शन का सवाल नहीं हो सकता। इस प्रकार निरूपित होने पर यह सवाल मूल कारण की तलाश हो जाता है जिस का ख़याल ही तर्कानुसारेण भ्रामक है। मूल कारण का विचार नियततत्ववाद में पूर्वधारणा करता है। यदि प्रत्येक वस्तु का कोई कारण है तो यह कारण-शृंखला निश्चय ही अनन्त होगी। यह शृंखला सुदूरतम बिन्दु पर भी टूटेगी नहीं। इसलिए मूल कारण का विचार स्वयं अपने ही तर्क से प्रतिबाधित हो जाता है। वह अन्तर्विरोधपूर्ण है। क्यों के सवाल से उलझने के कारण दर्शन का चरित्र धार्मिक हो जाता है क्योंकि तर्कशास्त्रीय दृष्टि से भ्रामक समस्या का अन्वेषण केवल विश्वास के आधार पर ही किया जा सकता है जिस से अन्वेषण के परिणाम का पूर्वानुमान भी हो जाता है। क्यों के सवाल के दो वैकल्पिक उत्तर हैं। यह विश्व है क्योंकि यह रचा गया है अथवा यह विश्व है क्योंकि यह है। दोनों ही उत्तर अधूरे हैं। पहला उत्तर पूरा होने के लिए एक स्रष्टा की पूर्वधारणा करता है और तब भी यह एक निर्णायक उत्तर नहीं हो पाता। यदि तर्कशास्त्रीय दृष्टि से क्यों का सवाल विश्व के बारे में वैध है तो वह विश्व के रचयिता के बारे में भी उतना ही वैध है। इस तरह असावधान अन्वेषक के लिए प्रश्नों के अनन्त गह्वर का फिसलनभरा रास्ता खुल जाता है। दूसरे उत्तर का पूरा रूप इस प्रकार होगा विश्व है क्योंकि यह अनादि है। इस उत्तर को पुष्टि की जरूरत होती है जो विज्ञान द्वारा की जाती है। सृष्टि के सिद्धान्त के लिए विज्ञान के यहाँ कोई जगह नहीं है। विश्व का अनादित्व विज्ञान द्वारा अन्वेषित इस तथ्य से भी प्रमाणित है कि उस की सत्ता और सम्भवन उसी में अन्तर्निहित नियमों से निर्धारित हैं। इस के विपरीत पहला उत्तर, तर्कानुसारेण भ्रामक होने के अलावा कभी प्रमाणित भी नहीं किया जा सकता। इसलिए वह दर्शन का उत्तर नहीं हो सकता।

यह माना जाता है कि विज्ञान 'क्या' का उत्तर नहीं दे सकता। विज्ञान उत्तर नहीं दे सकता क्यों कि सवाल असगत और अधूरा है, क्यों कि वह अर्थहीन है। किसी भी सार्थक वैज्ञानिक अन्वेषण की प्राथमिक शर्त यह आग्रह है कि सवाल तर्कसगत हो, क्यों कि सवाल की प्रकृति और रूप अन्वेषण की स्वतन्त्रता को सीमित करते तथा उत्तर के चरित्र का पूर्वनिर्धारित कर देते है। आप 'क्या' का उत्तर प्राप्त करने के लिए 'क्यों क्या' पर विचार किये बिना नहीं रह सकते। सवाल के अधूरा रहने पर अन्वेषण की प्रकृति अस्पष्ट रहती है। लेकिन सही रूप और सही भाषा में पूछे जाने पर उस का उत्तर विज्ञान द्वारा दिया जा सकता है, केवल विज्ञान द्वारा। विश्व के जैसा वह है वैसा होने को हम केवल विश्व की घटक घटनाओं के बारे में जानकारी के प्रकाश में ही समझ सकते हैं। सम्भवन के नियम ही अस्तित्व की प्रकृति का उद्घाटित करते हैं। अस्तित्व की प्रकृति को समझने का और कोई तरीका नहीं है। दर्शन की आधारभूत समस्या ब्रह्माण्ड के रहस्य को मात्र वैज्ञानिक ज्ञान की मदद से ही समझा जा सकता है।

'क्यों' का सवाल असगत है क्यो कि उस का निहितार्थ अनस्तित्व की वैकल्पिक सम्भावना को स्वीकार कर लेना है। यदि आप पूछते हैं कि विश्व का अस्तित्व क्यो है तो इस का तात्पर्य यह है कि उस का अस्तित्व आवश्यक नहीं भी हो सकता है। परिकल्पना के रूप में ही सही हमें अनस्तित्व को एक वास्तविकता की तरह स्वीकार करना है। लेकिन अस्तित्ववान बुद्धि द्वारा अनस्तित्व की धारणा नहीं की जा सकती। यह पूछना बिल्कुल अलग बात है कि यह विश्व ऐसा क्यो है। प्रश्न के इस रूप का निहितार्थ यह है कि वह कुछ और तरह से भी हो सकता था। इस में अनकही वैकल्पिक सम्भावना अनस्तित्व नहीं बल्कि अस्तित्व का कोई और रूप है। प्रश्न के इस रूप का उत्तर विज्ञान द्वारा दिया जा सकता और दिया गया है जो बताता है कि यह विश्व अपने अन्तर्निहित नियमों के कारण ऐसा है क्यो कि इस के अस्तित्व के नियम उसे कुछ और होने की अनुमति नहीं देते। यह स्पष्ट किया गया है कि विश्व जैसा है वैसा क्यों है, लेकिन अस्तित्व के अन्य रूपों की सम्भावना को खारिज नहीं कर दिया गया है। यदि इस के अस्तित्व के नियम कुछ और होते तो विश्व भिन्न भी हो सकता था।

यद्यपि विश्व के कुछ और रूप में होने की सम्भावना को खारिज नहीं किया गया है, लेकिन जैसा कि हेनरी पोइनकारे बताता है, यह सवाल ही बेमानी है कि क्या प्रकृति के सामान्य नियम भिन्न हो सकते हैं। आज आधारभूत समझे जाने वाले प्रकृति के नियमों को सदैव ही अधिक सामान्य नियमों के सन्दर्भ में देखा जा सकता है। प्रकृति के नियम अपने द्वारा नियन्त्रित भौतिक अस्तित्व से अलग नहीं हैं। अपने आप में उन का कोई अस्तित्व नहीं है। उन का अस्तित्व भौतिक अस्तित्व से अपृथक् है। एक तरह से वे भौतिक अस्तित्व का गुणधर्म हैं जो उस के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं। उन के रूप उन की अभिव्यक्ति के माध्यम से निर्धारित हैं। आधुनिक भौतिकीय शोध का अन्वेषण है कि भौतिक अस्तित्व के बदलते रूप प्राकृतिक नियमों के विशिष्ट रूपों से जुड़े हैं।

उन्हें किसी एक या अधिक सामान्य नियमों में तलाशा जा सकता है—यद्यपि अभी तक यह पूरा तरह किया नहीं गया है। इसी प्रकार वस्तुतः भौतिक अवस्थाओं का भी एक प्रारम्भिक सामान्य अवस्था के आधार पर विश्लेषित किया जा सकता है और जिस आदि आद्य सरल परिस्थिति' माना जाता है केवल वही अधिक प्रारम्भिक इकाइयों के जटिल संयोग के रूप में पाया जा सकती है। प्राकृतिक नियमों और भौतिक अस्तित्व के बीच कारण-सम्बन्ध वास्तव में पारस्परिक हैं। इसलिए ब्रह्माण्डीय प्रक्रिया की कारण शृंखला को इस विश्व से बाहर किसी अभौतिक मूल कारण में—खोजने की जरूरत नहीं है।

विश्व के कुछ और रूप में हो पाने के सवाल का भी क्षणिक महत्त्व ही है, और इस का भी स्वयं विश्व द्वारा ही निश्चयपूर्वक उत्तर दिया गया है। प्रत्येक क्षण एक भिन्न विश्व होता है, और एक ही क्षण में विश्वों की बहुलता है। न केवल इन सम्भाव्य बल्कि वास्तविक अगणित विश्वों में से प्रत्येक का अस्तित्व और सम्भवन उस के अपने विशिष्ट नियम विधान से नियन्त्रित होता है। तर्कबुद्धिवादी धर्मशास्त्र का मानना है कि ईश्वर ने विश्व की सृष्टि नहीं की, वह एक स्वचालित तन्त्र है ईश्वर का काम यह निर्णय करना है कि इन अगणित सम्भाव्य विश्वों में से वास्तविक विश्व कौन सा हो। विश्वों की बहुलता के केवल अलौकिक सम्भावना नहीं बल्कि काल और दिक् में एक वास्तविकता होने की वजह से अब चयनात्मक कार्य के लिए भी किसी ईश्वर की आवश्यकता नहीं है।

सृष्टि की धारणा के लोप के साथ ही दर्शन की उस बहुत पुरानी समस्या का भी लोप हो जाता है कि यह विश्व एक संयोग से उद्भूत है या आवश्यकता से। इस भौतिक विश्व के अनादि होने के कारण, जैसा कि विज्ञान बताता है इस की उत्पत्ति का सवाल ही अप्रासंगिक हो जाता है। यदि उत्पत्ति कैसे का सवाल अप्रासंगिक है तो 'अस्तित्व क्यों' का सवाल और भी अधिक अप्रासंगिक। विश्व है क्यों कि वह अनादि है। निश्चय ही विश्व क्यों है' का सवाल प्रथमदृष्ट्या ही बेतुका है।

एक सार्थक दार्शनिक अन्वेषण का प्रस्थान बिन्दु होने के लिए इस सवाल को एक बोधगम्य प्रासंगिक रूप में प्रस्तुत होना होगा—विश्व ऐसा क्यों है? दर्शन इस सवाल का उत्तर केवल वैज्ञानिक ज्ञान के प्रकाश में ही दे सकता है। विश्व में घटित घटनाओं की प्रक्रिया का ज्ञान ही बता सकता है कि वह वैसा क्यों है जैसा है। वही ज्ञान हमें कई पारम्परिक दार्शनिक धारणाओं अनादित्व अनन्तता और अमरत्व को नये प्रकाश में समझने के योग्य बनाता है। आधुनिक वैज्ञानिक शोध ने इन श्रद्धेय धारणाओं को ठोस और वास्तविक बना दिया है। यह विलक्षण है कि ईश्वर में विश्वास की अनिवार्यता को समाप्त कर देते हुए भी आधुनिक वैज्ञानिक शोध पारम्परिक रूप से अतिप्राकृतिक आध्यात्मिक सत्ता के साथ जुड़ी धारणाओं को मानव बुद्धि की व्याप्ति में ला सका है।

अध्याय दो

वास्तविकता और आभास

भौतिकविज्ञान एव जोवविज्ञान (मनोविज्ञान सहित) की नवीनतम उपलब्धियों के ज्ञानमीमासात्मक महत्त्व ने बोध की पुराना समस्या के समाधान मे बहुत योगदान किया है। ज्ञान कैसे सम्भव होता है? दर्शन ने सदैव ही इस सवाल का उत्तर देने का प्रयास किया है। सारे ज्ञान का साधन सामान्यत अनुभव का मान लिय जान पर भी ज्ञानमीमासा आभास और वास्तविकता की पृथकता द्वारा भ्रमित और दूषित थी। वास्तविकता का अभौतिक मानने का सिद्धान्त ज्ञान की सीमा बाध देता है। यह सिद्धान्त अन्तत काण्ट के अज्ञात और अज्ञेय वस्तु-सत् तक जा पहुँचा। दावा यह था कि हम केवल गोचर जगत् का हो ज्ञान पा सकते हैं, वास्तविकता का विश्व हमारी सज्ञानात्मक शक्ति से परे है। सापेक्षिकता भौतिकी के प्रकाश में वास्तविकता और आभास का भेद मिट जाता है। परिणामस्वरूप, बोध की रहस्यमय समस्या के प्रति

एक अधिक गम्भावतापूर्ण दृष्टि का उमालन होता है। निसन्देह समस्या का वास्तविक समाधान तो जावविज्ञान द्वारा हा प्रस्तावित किया जाना चाहिए। सापेक्षिकता का भौतिक सिद्धान्त तो इस अन्वेषण का एक सामान्य दार्शनिक मार्गदर्शन ही कर पाता है जिस से जैसा कि आगामा अध्यायों में दीखेगा, पहले की तुलना में अधिक सन्तोषप्रद परिणाम मिल सके हैं।

बोध की समस्या का समाधान अपने नई अनुभव के माध्यम स प्राप्त ज्ञान की विषयगत वैधता के बारे में सारे सन्देह का निराकरण कर देता है। ज्ञानमीमासा के क्षेत्र में यह आधारभूत उपलब्धि किसी भा प्रत्ययवादी विचलन के विरुद्ध वैज्ञानिक दर्शन की जामिन है। वैज्ञानिक दर्शन से मेरा आशय ब्रह्माण्ड के ऐसे सिद्धान्त से है जो कल्पनात्मक चिन्तन के बजाय प्रकृति के बारे में क्रमश सुनिश्चित होते ज्ञान पर आधारित हो। प्रत्ययवाद तक अतर्कसंगत हो चला है। सक्षेप में ज्ञानमीमासात्मक स्तर पर बीसवीं शताब्दी के विज्ञान की दार्शनिक उपलब्धि भौतिकवाद का पुष्टीकरण है। वह सनान के भौतिकवादी सिद्धान्त को प्रमाणित करता है।

आगे बढ़ने स पूर्व मैं इस बारे में तटस्थ रुख रखने वाले बर्लिन विश्वविद्यालय के प्रोफेसर हंस रीशेनबाख की सम्मति उद्धृत करना चाहूँगा। एक उच्च स्तरीय शिक्षाप्रद और रोचक ग्रथ में प्रोफेसर रीशेनबाख लिखते हैं दर्शन ने अनुभववाद और प्रत्ययवाद की दो बुनियादी अभिवृत्तियो में सदैव भेद किया है। आज का प्राकृतिक विज्ञान इन दोनों दृष्टिकोणों में से किसी को भी विजय का श्रेय नहीं देता। केवल अनुभव को ही प्राकृतिक नियमों की वैधता की कसौटी मानने वाले अनुभववाद पर और अधिक बल दिया गया है प्रत्ययवाद का यह सिद्धान्त भी प्रकृति के आधुनिक ज्ञान के लिए समान रूप से आधारभूत है कि विचार के माध्यम से जाने गये नियमों के साथ ज्ञात तथ्यों का सयोग ही विज्ञान की रचना करता है। आगमनात्मक प्रणाली का निरन्तर व्यवहार आधुनिक विज्ञान के अनुभववादी सिद्धान्त को अभिव्यक्त करता है। आगमन की अबाध सटीकता में विश्वास विचार की अनुभववादी प्रणाली का सार है। प्राकृतिक विज्ञान प्रकृति के नियमों की इस सार्वभौम वैधता पर अभौतिक आवश्यकतावश कोई भी रहस्यवादी आधार आरोपित करने से कोसों दूर है। आधुनिक प्राकृतिक विज्ञान की अभौतिकता विरोधी प्रवृत्ति कहीं भी इतनी स्पष्ट नहीं है जितनी वैधता की समस्या की इस धारणा में। हम इसे प्रकृति स धार्मिक तत्त्व के निष्कासन के रूप में भी परिभाषित कर सकते हैं। काल और दिक् सार-तत्त्व बल और विधि आदि की सभी सुस्पष्ट मानवत्वारोपी उत्पत्ति की धारणाएं आज उन अनुभवों से असम्बद्ध चित्रात्मक पुछल्ले हैं जिन पर भौतिक ज्ञान वस्तुत आधारित है। केवल ये अनुभव और एक भविष्यसूचक गणितीय सिद्धान्त में उन का समाकलन ही आधुनिक प्राकृतिक शोध की वस्तु बन पाते हैं। आदिम समाजों की देवताओं से परिपूर्ण प्रकृति के दार्शनिकों की अभौतिक प्रकृति में स गुजरते हुए आज तथ्यों और उन के बीच

अवधारणात्मक सम्बन्धों की भौतिकी की निष्पक्ष प्रकृति तक क्रमिक सक्रमण स अधिक महत्त्वपूर्ण क्रान्ति मानवता के इतिहास में सम्भवत कभी घटित नहीं हुई है। (अणु और विश्व-व्यवस्था)

विनान तो मात्र तथ्य है, न कि शुद्ध विचार या चिन्तन का परिणाम। जैसा कि आइनस्टाइन का कहना है सारे विज्ञान का प्रयोजन हमारे अनुभवो का समन्वय और उन्हें एक तर्कसम्मत व्यवस्था में समायोजित करना है। इस प्रकार विज्ञान दो पाया पर खड़ा है अनुभव अर्थात् प्रेक्षित आधार सामग्री और सामान्य नियमों के अन्तर्गत उस का समायोजन। इन में स पहले को बाह्य विश्व से ग्रहण किया जाता है जब कि दूसरा वैज्ञानिक का यागदान है। पूर्व में उपलब्ध ज्ञान से सज्जित वैज्ञानिक की बुद्धि जब तक प्रेक्षित तथ्यों के कच्चे माल पर काम नहीं करती तब तक नये वैज्ञानिक सिद्धान्तों का जन्म नहीं हो सकता। पूर्व में उपलब्ध ज्ञान अनुभवों से प्रसूत है और नये सिद्धान्त हमारे ज्ञान के भावी विकास के लिए परिस्थिति का निर्माण करते हैं। वैज्ञानिक सिद्धान्त वैज्ञानिक के दिमाग से नहीं बुने जाते। उसे अनिवार्यत अपने कौशल की सहायता से कच्चे माल पर काम करने की आवश्यकता होती है। एक तर्कसम्मत व्यवस्था में अनुभवों को समायोजित करने के लिए उस के पास प्रारम्भ में ही अनुभव तो होने चाहिए।

यहाँ तक सब कुछ पर्याप्त स्पष्ट है। लेकिन यहाँ सवाल उठता है किस का अनुभव ? यदि उत्तर है कि यह जानने वाले विषयी की चेतना से बाहर अस्तित्वमान विषयों का अनुभव है तो दर्शन स्पष्टत भौतिकवाद हो जाता है जो हर तरह से ज्ञान के विषयिगत तत्त्व का बहिष्कार करता है। क्या यही आधुनिक विज्ञान का उत्तर है ? हमें इस पर विचार करना होगा।

अनुभव शेष विश्व से भिन्न एक चेतन सत्ता की पूर्व कल्पना करता है लेकिन चेतन सत्ता स्वय भौतिक विश्व की पृष्ठभूमि से उपजती है और शेष प्रकृति का अनुभव करती हुई भी उस का अश बनी रहती है। वास्तव में बाह्य विश्व' एक भ्रामक पद है क्यों कि हम अपने अनुभव के विश्व के अगभूत अश हैं। हमारे शरीर, हमारे बोध के अवयव, सम्पूर्ण सज्ञान तन्त्र—सब जो ज्ञान के लिए पूर्वापेक्षित हैं—स्वय हमारे द्वारा अनुभूत विश्व के अश हैं। हम विश्व को बाहरी व्यक्ति की तरह नहीं देखते। हमारा अह हमारा दिमाग हमारा बोध, हमारा विचार—ये सब कथित बाह्य विश्व के साथ अपृथक् रूप से अन्तर्ग्रथित हैं। ज्ञान के ये विषयिगत घटक वस्तुगत प्रकृति की सम्पूर्ण सश्लिष्टता के अश हैं।

प्रोफेसर रीशनबाख द्वारा उल्लिखित अनुभववादी-प्रत्ययवादी समन्वय का तात्पर्य यह है कि ज्ञान वैज्ञानिक की बुद्धि द्वारा अन्वेषित तरीकों और पद्धतियों की सहायता स अनुभवों को एक तर्कसगत व्यवस्था में समायोजित करने का परिणाम है। ठीक यही ज्ञान का भौतिकवादी सिद्धान्त है। भौतिकवाद से अपने को अलग कर लेने पर

अनुभववाद विज्ञान के काम का नहीं रह जाता। सारे वैज्ञानिक अन्वेषण का प्रस्थान बिन्दु विषय के भौतिक अस्तित्व का स्वीकार है। प्रकृति की भौतिक वास्तविकता का नकार देने पर वैज्ञानिक शोध निरर्थक हो जाता है। यदि अनुभव करने के लिए कुछ हो ही नहीं तो अनुभव नहीं हो सकता। अनुमान और आगमन अनुभव के ही अंश हैं। वैज्ञानिक सिद्धान्तों की निर्मिति के लिए वे अनिवार्य हैं। यदि यह माना जाता है कि खगोलीय पिण्डों की सैर यात्रा बिना कोई उन के अनुभव का दावा नहीं कर सकता तो कोई खगोलभौतिकी सम्भव ही नहीं है। शुद्ध अनुभववाद के अनुसार दृश्यानुभव ज्ञान का वैध स्रोत नहीं है। दूरवीक्षण यन्त्र के माध्यम से जो कुछ देखा जाता है वह नक्षत्र नहीं बल्कि उस से आते हुए प्रकाश के कारण खगोलज्ञ के दृष्टिपटल पर बनने वाला बिम्ब है। सभी खगोलीय सिद्धान्त आनुमानिक होते हैं, प्रकृति के नियमों के आविष्कार का एकमेव रास्ता आगमन है—बड़ी संख्या में विशेष प्रकार की घटनाओं के अनुभव के आधार पर सामान्य सिद्धान्तों का निरूपण।

अनुमान और आगमन विचार के तरीके हैं। वे संज्ञान की प्रक्रिया में वैज्ञानिक के विषयिगत अवदान के प्रतिनिधि हैं। ज्ञानरूपी तैयार माल के लिए अनुभव के कच्चे माल को अवधारणाओं के साँचों में ढलना ही होगा। लेकिन ये साँचे अनुभवनिरपेक्ष रूप नहीं हैं। वे स्वयं पूर्व अनुभवों के आधार पर बनते हैं और इसलिए नये अनुभवों के प्रभाव में बदलते भी हैं। ज्ञानमीमांसीय अर्थों में बीसवीं शताब्दी की भौतिकी का क्रान्तिकारी महत्त्व उस के अनुभवों के उस समूह में है जिसे पुरानी अवधारणाओं के साँचों में ठीक-ठीक नहीं बिठाया जा सकता। नये अनुभवों के नये अवधारणात्मक साँचों का निर्माण करना ही होगा। इस से यह भी पुनः प्रमाणित होता है कि विचार सत्ता अर्थात् अस्तित्व द्वारा निर्धारित है। यह भौतिकवादी ज्ञानमीमांसा का मूलभूत सिद्धान्त है, जो स्वीकार करता है कि एक बार निरूपित हो जाने पर विचारों की भी एक सापेक्षिक विषयगत वैधता होती है और अधिक एवं उच्चतर ज्ञान प्राप्त करने की प्रक्रिया में वे अनिवार्य कारक होते हैं।

हाल्डेन तथा हक्सले सरीखे प्रमुख जीववैज्ञानिकों ने भी इस बिन्दु पर बल दिया है। हाल्डेन का मत है कि एक सजीव अवयव-संस्थान का भी निर्जीव प्रकृति से अलग विषय के रूप में सही अध्ययन नहीं किया जा सकता, उसे अपने पर्यावरण से अविच्छेद्य रूप से अन्तःसम्बद्ध मानना होगा। कोई भी अवयव-संस्थान अपने पर्यावरण के साथ ही एक इकाई बनता है। उस का कहना है जीवन की अवधारणा एक अवयव संस्थान के पर्यावरण और उस की अन्तःवस्तु दोनों को एक साथ अपनी परिधि में लेती हैं। हक्सले तो और भी स्पष्ट है। वह लिखता है यह तथ्य अपने में अर्थपूर्ण है कि ब्रह्माण्ड की सामान्य आधार सामग्री का ही एक अंश मनुष्य विचार और अनुभव अभिलाषा और योजना के लिए समर्थ है लेकिन उस के बनने की सुनिश्चित विधि उस की दैहिक बनावट उस की भावनाओं की किस्म उस के सोच के प्रकार

और विषय उस के अस्तित्व को रूप और सुस्पष्टता देने वाली चीज़—इन सब को उस के पर्यावरण के सन्दर्भ में ही समझा जा सकता है। मनुष्य और उस का पर्यावरण मिल कर एक अन्तर्ग्रथित सम्पूर्ण बनते हैं।

एक ओर से भौतिकी और दूसरी ओर से जीवविज्ञान एक ऐसे स्थल पर आ मिले हैं जहां बाह्य विश्व पद ने अपना सब अर्थ खो दिया है। आधुनिक विज्ञान के महान आविष्कार के प्रकाश में वास्तविकता और आभास के भेद का लोप हो गया है।

अब हमारे सम्मुख सवाल है अनुभव किस का? क्या हम वास्तविकता का अनुभव करते हैं या केवल आभास का? जो कुछ अभी तक कहा जा चुका है उसे देखते हुए यह सवाल उठता ही नहीं। तथापि आधुनिक भौतिकी के आविष्कारों से उत्पन्न दार्शनिक समस्या ज्ञानमीमांसात्मक है। इसलिए, इस सवाल को उस की प्रत्यक्ष गुणवत्ता के आधार पर गहराई से जांचना चाहिए।

बीसवीं शताब्दी भौतिकी के आविष्कारों से विश्व का नव अध्यात्मवादी दृष्टिकोण बरामद करने वाले वैज्ञानिक भी अनुभव को ज्ञान का स्रोत मानने से इनकार नहीं करते। लेकिन वे मानते हैं कि हमारे अनुभव का विषय बाह्य विश्व नहीं है कि यह हमारा अपना संवेदन है और हमारे पास यह जानने का कोई उपाय नहीं है कि किस सीमा तक हमारे संवेदन उन्हें उत्पन्न करने वाले विषयों से मेल खाते हैं। दूसरे शब्दों में, उन के अनुसार हम विश्व को आभास रूप में अनुभव करते हैं वास्तविकता कभी हमारे संज्ञानात्मक क्षमता की पहुँच में नहीं आती।

इस मत के समर्थन में यह भी कहा जाता है कि हमारे अनुभव का परिचित विश्व—रंग, ध्वनि स्वाद स्पर्श और गंध का विश्व—भौतिकी का विश्व नहीं है। भौतिकी द्वारा अनुशासित और वर्णित विश्व अमूर्त अवधारणाओं से निर्मित है। वह हमारे संवेदन को प्रभावित करने वाले अनुषंगी गुणों के बारे में कुछ नहीं जानता। इसलिए निष्कर्ष निकाला जाता है कि हमारे अनुभव के जगत का कोई वस्तुगत अस्तित्व नहीं है। वह हमारे बोध का परिणाम है और केवल चेतना में अन्तर्निहित है। दूसरे शब्दों में, यदि अनुभव की प्रत्यक्ष वस्तु, चेतना के संवर्गों को भौतिक वास्तविकता प्रदान कर दी जाती है, तो भौतिकीय विश्व निश्चय ही अभौतिक अवधारणाओं भ्रामक छायाओं की पूर्वपीठिका हो जायेगा।

वास्तव में, आधुनिक भौतिकी के नव अध्यात्मवादी व्याख्याकार मानते हैं कि समकालीन सैद्धान्तिक भौतिकी के अन्वेषणों का विषय अलौकिक, अज्ञेय कुछ है। ऐसा मानना भौतिक विज्ञान को नष्ट करना है। यह काण्टीय स्थिति से भी आगे बढ़ जाना है। नव-अध्यात्मवादी भौतिक वास्तविकता को वस्तु सत् की हैसियत भी नहीं देते। वे कहते हैं कि आधुनिक भौतिकी ने न केवल सार और कारणता की अवधारणाओं से मुक्ति पा ली है बल्कि विश्व को गणितीय सूत्रों के एक गुच्छे में घटा

ल्पिया है। दूसरे शब्दों में हमारे अनुभव में वर्तमान विश्व केवल हमारी चेतना में अस्तित्ववान है उस का कोई भौतिक आधार नहीं है। जो कुछ हम अनुभव करते हैं, उस का भौतिकी के लिए कोई अस्तित्व नहीं है, अर्थात् वह भौतिक स्तर पर अवास्तविक है। भौतिकी का विश्व एक गणितीय निर्मिति है। परागतता और दृश्य गतता दोनों की ही विषयगत वास्तविकता नहीं है। दोनों ही हमारी चेतना का प्रक्षेपण हैं। चेतना ही एक मात्र वास्तविकता है। इसलिए, ज्ञान का सवाल ही नहीं उठता। ज्ञान सम्भव ही नहीं है। सैकड़ों वर्षों की महत्त्वाकांक्षा प्रगति के बाद क्या विज्ञान अपने समर्थकों को इस दयनीय स्थिति में ले आया है? वास्तविकता और आभास के मनमाने विभेद की समस्या के आधुनिक विज्ञान के हल को जानने के लिए हमें नयी भौतिकी के विश्व को देखना होगा। चित्र को एक सही परिप्रेक्ष्य में रखने के लिए विज्ञान और दर्शन के आधारभूत सिद्धान्तों से निर्देशित होना और इन दोनों के सम्बन्ध के बारे में स्पष्ट मन्तव्य रखना आवश्यक होगा।

अध्याय तीन

विज्ञान और दर्शन

निस्सन्देह आधुनिक वैज्ञानिक सैद्धान्तिकी का गम्भीर दार्शनिक महत्त्व है, इस के कारण विज्ञान और दर्शन का पुराना श्रम-विभाजन अयुक्तियुक्त हो गया है। विज्ञान पुरानी सीमारेखा का अतिक्रमण कर रहा है। प्रकृति के रहस्यों के गहनतलों तक पहुंचते हुए विज्ञान उन समस्याओं से रू-ब-रू है जिन का हल पहले दर्शन पर छोड़ दिया जाता था। वैज्ञानिक अन्वेषण उस इलाके में प्रवेश कर गया है जिसे पारम्परिक रूप से पराभौतिक क्षेत्र माना जाता रहा है। लेकिन इस बात का कोई प्रमाण नहीं है कि भौतिकी के नये आविष्कारों ने पिछले डेढ़ सौ वर्षों के दौरान हुए वैज्ञानिक विकास के दार्शनिक निहितार्थों को नकार दिया है।

आलोचनात्मक परीक्षण किये जाने पर वैज्ञानिकों का व्यक्तिगत दार्शनिक अनुचिन्तन आधुनिक विज्ञान के सिद्धान्तों से समर्थित नहीं होता। किसी वैज्ञानिक की व्यक्तिगत

राय के बजाय सामान्य वैज्ञानिक शोध से उत्पन्न सिद्धान्तों के तर्कसम्मत आशय ही निर्णायक तत्त्व हैं। पर्यवेक्षणों और प्रयोगों से प्राप्त तथा बारम्बार सत्यापित तथ्यों का समूह ही वैध दार्शनिक निष्कर्षों का आधार है।

वैज्ञानिक अन्वेषण का एक अनिवार्य लक्षण शब्द प्रमाण की अवहेलना है। वैज्ञानिक शोध की सामान्य प्रवृत्ति के विपरीत लगते वैज्ञानिकों के दार्शनिक विचारों को उन की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से विकसित वैयक्तिक अभिरुचि मानते हुए छोड़ देना चाहिए। मेक्डोगल को रूढ़िवादी मनोविज्ञान का अन्तिम आदिवासी कहा जाता है। तथापि, अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'माडर्न मेटीरियलिज्म एण्ड एमर्जेण्ट इवोल्यूशन' में वह लिखता है 'कोई न्यूटन, कोई पुष्टिन, कोई लॉज हमें अपने धार्मिक और नैतिक विश्वासों के बारे में प्रभावी ढंग से बता सकता है, लेकिन ये विश्वास उस की वैज्ञानिक शोध से प्राप्त निष्कर्ष नहीं होते।'

लाइबनित्स की शिकायत है कि न्यूटन ने ईश्वर को उस के सब गुणों से वंचित कर दिया तथा धर्म की नींव को धसका दिया। लेकिन स्वयं न्यूटन धर्मशास्त्रीय पूर्वग्रहों से ग्रस्त एक गम्भीर धार्मिक व्यक्ति था। वैज्ञानिक ज्ञान की दार्शनिक अर्थवत्ता और वैज्ञानिकों की वैयक्तिक राय के बीच भेद करते हुए प्रोफेसर हाइमैन लेवी लिखता है 'इन जकड़बन्द मानवीय कल्पनाओं से मुक्त होने में वैज्ञानिक आन्दोलन को कई शताब्दियाँ लग गयी हैं। अफसोस है कि कई वैज्ञानिकों का लेखन बताता है कि यह मुक्ति अभी भी पूर्ण नहीं है। लेकिन कोई व्यक्ति किसी आन्दोलन का प्रवक्ता नहीं हो सकता। प्रत्येक एक दर्पण है जिस में उस आन्दोलन का बिम्ब—चाहे अपूर्ण हो या सही—बनता है जिस का वह स्वयं एक हिस्सा है, किन्तु यह बिम्ब उस के अपने इतिहास से रंजित और विकृत है और वह स्वयं को उस इतिहास से विच्छिन्न नहीं कर सकता। आन्दोलन व्यक्ति का अतिक्रमण करता है। अपने को भ्रान्त सिद्ध करके ही मनुष्य अपने निजी व्यक्तिगत पूर्वग्रह आन्दोलन पर थोपता है। केवल एक जीनियस ही आन्दोलन से महत्तर हो सकता है और ऐसा जीनियस एक विरल घटना है।' ('दि युनिवर्स आफ साइंस')

आधुनिक विज्ञान का दार्शनिक महत्त्व इस बात में है कि वह दर्शन के स्वायत्त अस्तित्व के दावे का खण्डन करता है। दर्शन की ब्रह्माण्डमीमांसा, सत्तामीमांसा और ज्ञानमीमांसा से सम्बन्धित सब समस्याएं केवल वैज्ञानिक ज्ञान के प्रकाश में ही क्रमशः हल की जा सकती हैं। यह प्रकाश किसी भी पूर्वकाल की अपेक्षा आज अधिक तेज है। ऊपर उद्धृत अपनी पुस्तक 'अणु और ब्रह्माण्ड' में प्रोफेसर हैंस रीशेनबाख लिखता है 'सम्भवतः भौतिक शोध की आधुनिक पद्धतियों का विशिष्ट लक्षण कहीं भी उतना सुस्पष्ट अभिव्यक्त नहीं है जितना दार्शनिक से भौतिक की ओर प्रवृत्ति में। भौतिक विज्ञान आज एक दार्शनिक हो गया है क्यों कि अपने सिद्धान्तों को विकसित करने के क्रम में उस उन अवरोधों का सामना करना पड़ा जिन्हें तोड़ कर ही नया और अज्ञात भूमि को जाना जा सकता था।'

दर्शन का कार्य एक समग्र के रूप मे अस्तित्व की व्याख्या करना है। अस्तित्व की व्याख्या के लिए अस्तित्व के ज्ञान की आवश्यकता होती है। अस्तित्व की विभिन्न अवस्थाओं के बारे म ज्ञान विज्ञान की विभिन्न शाखाओं क माध्यम स ही सम्भव है। दर्शन का कार्य वैज्ञानिक नान के सम्पूर्ण समूह को प्रकृति और जीवन के एक व्यापक सिद्धान्त में समायोजित करना है। विज्ञान का कार्य वर्णन करना है और दर्शन का व्याख्या करना। इसलिए दर्शन को विज्ञानों का विज्ञान कहा जाता है।

लेकिन आज भी यह दावा करने वाले दार्शनिक हैं कि बिना अडा के भी आमलेट बनाया जा सकता है, कि दर्शन का कार्य वैज्ञानिक शोध द्वारा प्रदत्त सामग्री का प्रकृति और जीवन के एक सिद्धान्त के रूप में विकास नहीं बल्कि वैज्ञानिक ज्ञान के लिए प्रतिमान तैयार करना है। व्हाइटहेड उन्हीं में से एक है। अपनी पुस्तक साइन्स एण्ड दि मॉडर्न वर्ड' की भूमिका में वह लिखता है अपना एक क्रियाशीलता में दर्शन ब्रह्माण्डिकी का आलाचक है। उस का कार्य वस्तुआ की प्रकृति से सम्बन्धित विभिन्न अन्तर्बोधों का समन्वयन पुनर्गठन और वैधीकरण है। उसे परम प्रत्ययो की सवीक्षा तथा हमारा ब्रह्माण्डीय योजना को निरूपित करने में सम्पूर्ण साक्ष्य के अवधारण का आग्रह करना होगा। यदि दर्शन के कार्य के बारे में मेरा मन्तव्य सही है तो वह सभी बौद्धिक क्रियाशीलताओं में सर्वाधिक प्रभावी है। वह कारीगरों के एक पत्थर उठाने तक से पहले एक कैथड्रल बना चुकता है, और उस की महराबों के गिरने से पूर्व उसे नष्ट भी कर चुका होता है। वह आत्मा की इमारतों का स्थपति है, और वह उन का विलायक भी है और आध्यात्मिक भौतिक का पूर्वगामी है।

आधुनिक वैज्ञानिक सिद्धान्त दर्शन के इन दावों को चुनौती देते हैं। दूसरी ओर दार्शनिक क दावा से विकसित सरचनाओं में उन्हें बुना भी गया हो सकता है। लेकिन उन का वास्तविक दार्शनिक महत्त्व बिल्कुल भिन्न हो सकता है। उस महत्त्व को किन्हीं वैज्ञानिकों के व्यक्तिगत पूर्वग्रहों और अभिरुचियों से भ्रमित नहीं होने देना चाहिए।

जब भौतिकी आध्यात्मिक क्षेत्र पर आक्रमण करती है तो वह अपने को रहस्यवाद को नहीं सौंप देता। इस के विपरात भौतिकी के अधिकार-क्षेत्र में आ जाने पर अभौतिक सवर्ग भी रहस्यमय नहीं रहत। निश्चय ही, अभौतिक समस्याओं पर आक्रमण करन में भौतिकीय शोध के पुराने अस्त्र काम के नहीं हैं। भौतिकी आज उन सवर्गों से सम्बन्धित है जो प्रत्यक्ष अनुभव की अवज्ञा करते हैं। पर्यवेक्षण के सूक्ष्मतम यन्त्र भी किसी काम के नहीं निकलते। गणित हा सैद्धान्तिक भौतिकी का मुख्य उपकरण है। लेकिन गणितीय प्रतीक भौतिक सत्ताओं के प्रतिनिधि हैं, हर स्थिति में ये सत्ताएं वैज्ञानिक के दिमाग के बाहर अस्तित्व में होता हैं। अन्यथा उच्चतर अमूर्त गणिताय तर्क द्वारा प्राप्त निष्कर्ष प्रकृति के पर्यवेक्षणीय तथ्यों से पुष्ट नहीं हो सकते। गणितीय समीकरण खोखले अभिसमय नहीं हैं। वे भौतिक घटनाओं के सम्बन्धों का वर्णन करते हैं।

आधुनिक भौतिकी के मार्ग इस अर्थ में पराभौतिक हैं कि वे प्रत्यक्ष भौतिक पर्यवेक्षण की सीमा से परे हैं। लेकिन इन अर्थों में पराभौतिकी अपने मूल ग्राह्य अर्थ से मुक्त हो चुकी है। प्राकृतिक विज्ञान पराभौतिकी की कीमत पर उन्नत हुए और अपनी सीमारेखा को मिटाते गये हैं। इन्द्रियों के बोध का विस्तार करने वाला प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण यन्त्र पराभौतिकी के क्षेत्र का अतिक्रमण है। आज भौतिक और पराभौतिक के बीच की सीमारेखा केवल एक तर्कशास्त्रीय औपचारिकता के रूप में ही बच रहता है।

अनुभव के क्षेत्र से पराभौतिक क्षेत्र के अलगाव को वास्तविकता और आभास के भेद से ही समझा जा सकता है। नयी भौतिकी उस भेद को मिटा देता है। भौतिकी का विश्व भी इस अर्थ में पराभौतिक है कि उसके घटकों का प्रत्यक्ष अनुभव सम्भव नहीं है। लेकिन उन्हें अब पूर्वमान्य सवर्ग भी नहीं माना जाता। नयी भौतिकी का पराभौतिक आधार एक परवर्ती परिणाम है। उस की भौतिक वास्तविकता प्रायोगिक स्तर पर स्थापित है। नयी भौतिकी की यह मूलभूत उपलब्धि इस रूढ़ धारणा को मिटा देता है कि पराभौतिकीय धारणाएँ शुद्ध तर्क की सरचनाएँ हैं कि पराभौतिकीय समस्याएँ विश्लेषणात्मक हैं उन्हें प्रमाणित नहीं किया जा सकता कि पराभौतिकीय ज्ञान की कोई अनुभवगम्य वैधता नहीं है।

हमारे एन्द्रिय पर्यवेक्षण के अन्तर्गत आने वाली हर वस्तु एक निश्चित न्यूनतम आयाम का अतिक्रमण करता ही है। यह मानने का कोई कारण नहीं है कि प्रत्यक्ष भौतिक पर्यवेक्षण की सीमा के कारण वस्तुओं में कोई गुणात्मक परिवर्तन सम्भव होता है। इस रूढ़ धारणा के अलावा यह मानने का कोई आधार नहीं है कि 'पराभौतिक' अस्तित्व अनुभव के विश्व की चीजों से सारतः अलग है। द्वैतवाद इस मान्यता का परिणाम है कि पराभौतिक अस्तित्व अनुभव के विश्व की चीजों से सारतः अलग है और द्वैतवाद दर्शन को दूषित करता है।

दर्शन द्वैतवाद के तत्त्वतः धर्मशास्त्रीय अभिप्रायों के कारण उसे सदैव नापसन्द करता है। आधुनिक वैज्ञानिक दर्शन किसी भी तरह के द्वैतवादी सिद्धान्त के निश्चित रूप से विरुद्ध है। द्वैतवाद आधुनिक दर्शन के प्रणेता के समय से ही उस के पीछे लगा हुआ है। देकार्त ने दर्शन को धर्मशास्त्र से तो मुक्त किया लेकिन उसे चेतना के आधिपत्य में रख दिया जिसे वह एक अभौतिक तत्त्व मानता था। सारतः भिन्न चेतना और पदार्थ की विपरीत सकल्पनाएँ मीमांसात्मक चिन्तन से समन्वित नहीं की जा सकती थीं। प्राकृतिक विज्ञानों के विकास ने इस समन्वय को सम्भव की परिधि में ला दिया। शरीर विज्ञान की सहायता से आधुनिक मनोविज्ञान ने चेतना के रहस्यों को सुलझाना शुरू कर दिया। द्रव्य का पुराना स्थितिशील सिद्धान्त अभी भी अन्तिम समाधान के मार्ग में बाधा बना हुआ था। बाह्य विश्व के विचारणीय पदार्थ और चेतना के विश्व के बीच एक अनुल्लंघनीय खाई दिखने लगी। नयी भौतिकी ने पदार्थ की गतिशील धारणा से इस अन्तिम अवरोध को भी सफलतापूर्वक पार कर लिया।

द्वैतवाद को तत्त्वमीमांसीय (भौतिक और पराभौतिक के बीच) के साथ साथ ज्ञानमीमांसीय (चेतना और पदार्थ के बीच) स्तर पर मिटा कर नयी भौतिकी ने पराभौतिकी का वास्तविक रूप प्रकट कर दिया। वैज्ञानिक दर्शन के एक अवयव के रूप में पराभौतिकी का अनुभवजन्य सिद्धांत—यदि यह पद अब भी जरूरी हो—रहस्यवाद के लिए कोई आधार नहीं बनाता।

अपने स्वभाव से ही विज्ञान कभी रहस्यवादी नहीं हो सकता। उस का प्रयोजन ज्ञान प्राप्त करना है। विज्ञान सर्वज्ञ नहीं है। लेकिन वह ज्ञान पाने के दावे पर दृढ़तापूर्वक अड़ा है। रहस्यवाद अज्ञान का परिणाम है। वह अज्ञान को एक गुण बना देता है। वह ज्ञान पाने के दावे के समर्पण का प्रतिनिधित्व करता है। वह ज्ञान पाने की सम्भावना पर सन्देह करता है। वास्तव में, रहस्यवाद का निहितार्थ पराजय का स्वीकार है। घिसपिटे कथन 'रहस्यमय प्रकृति' का विचित्र ढंग से कुछ वैज्ञानिकों में भी मान्यता पा लेना पराजय मान लेना है। तथापि, वे इस कथन का प्रयोग वैज्ञानिक नहीं काव्यात्मक अर्थ में ही करते हैं। रूढ़ धारणा यही थी कि प्रकृति के रहस्यों को जाना नहीं जा सकता, प्रयास करने से कोई लाभ नहीं है, इसलिए इन्हें छोड़ देना चाहिए। आधुनिक विज्ञान, और वह भी भौतिकी, के ऐसी पराजयवादी मन स्थिति में होने के किसी भी कारण को मानना पिछले तीन सौ वर्षों के विज्ञान के शानदार इतिहास और वैज्ञानिक ज्ञान के विजयी अभियान के खेदजनक अज्ञान का प्रदर्शन करना है।

बर्ट्रेण्ड रसल लिखता है : 'विज्ञान के दो उद्देश्य हैं। एक ओर, सम्बन्धित क्षेत्र में तथ्यों का अधिकतम सम्भव सीमा तक जानने की आकांक्षा है, दूसरी ओर, जाने गये सारे तथ्यों को सामान्य नियमों की न्यूनतम सम्भव संख्या में समन्वित करने का प्रयास है।' ('एनेलेसिस ऑफ मैटर')

पराभौतिक तर्कोत्पन्न अथवा सम्पूर्णतः आध्यात्मिक—किसी भी तरह के रहस्यवाद के साथ इन उद्देश्यों का कोई मेल सम्भव नहीं है। नयी भौतिकी को अभी अपने क्षेत्र से सम्बन्धित सभी तथ्यों की जानकारी नहीं हो पायी है। उसे पता है कि अभी बहुत कुछ जानना शेष है और वह इस उद्देश्य के लिए आगे बढ़ने को प्रस्तुत है। वह अज्ञेय पर विस्मित हो कर सन्तुष्ट रह जाने वाले किसी भी रहस्यवाद से अपरिचित है।

रसल जिस दूसरे उद्देश्य का श्रेय विज्ञान को देता है, वह न केवल उसे दर्शन का साथी बनाता है बल्कि बूढ़ी माँ के अपनी उद्यमी सन्तान से सीखने में अहंकार या रूढ़िवादिता के आड़े आने पर पराभौतिकी के क्षेत्र का अतिक्रमण करने के लिए भी प्रेरित करता है। विज्ञान के सामान्य नियमों की दार्शनिक वैधता होती है। उन के उद्घाटक प्रकाश में ही दर्शन की समस्याओं को सुलझाया जा सकता है। विज्ञान के नियम प्रकृति के ज्ञान का प्रतिनिधित्व करते हैं। जीवन के प्रकृति का एक अंश होने के कारण उस का ज्ञान अस्तित्व की—जीवन की—समस्याओं का अधिक सफलतापूर्वक मुकाबला करने के

लिए हमें समर्थ बनाता है। ज्ञानमीमांसीय सन्देहवादी होने के कारण एंगेल्स निश्चय ही विज्ञान के नियमों की तत्त्वमीमांसीय वैधता नहीं स्वीकार करता। उस के अनुसार वे केवल मानसिक संरचनाएं हैं और तर्कशास्त्रीय स्तर पर ही सत्य हैं। यह एक अलग सवाल है जिस पर विचार यहाँ सम्भव नहीं है। अभिप्राय यह है कि एंगेल्स की राय में भी अपने स्वभाव में ही विज्ञान दर्शन के क्षेत्र का अतिक्रमण करता है तथा अनुभव सभी दार्शनिक समस्याओं की अचूक कुंजी बन जाता है। दर्शन और विज्ञान के बीच की सीमारेखा के इस प्रकार मिट जाने पर रहस्यवाद के लिए कोई जगह नहीं छूटती। नयी भौतिकी मानवीय ज्ञान के शानदार समन्वय की ओर एक महान अभियान का प्रतिनिधित्व करता है।

थॉमस हक्सले की प्रसिद्ध उक्ति कि विज्ञान व्यवस्थित सामान्य बोध है अर्से से अपनी प्रतिष्ठा पा चुकी है। लेकिन सारे प्रत्ययवादी और ज्ञानमीमांसीय कुतर्क के बावजूद हक्सले की विज्ञान की परिभाषा सामान्य तौर पर सही है। सामान्य बोध से हक्सले का तात्पर्य था भौतिक विश्व की वास्तविकता की सहज पहचान। यह पहचान एक अवयव-संस्थान के अपने परिवेश से आदिम प्रतिक्रिया का परिणाम होता है। हक्सले के कथन का दार्शनिक महत्त्व वैज्ञानिक ज्ञान के तत्त्वमीमांसीय आधार पर बल देना है। विज्ञान की किसी भी तत्त्वमीमांसीय वैधता को नकारने वाले विचित्र ज्ञानमीमांसीय असंयम के इस दौर में पुरानी काट के सामान्य बोध का संयमकारी प्रभाव दार्शनिक विमर्श में एक सन्तुलन बनाये रख सकता है।

यह याद रखना उपयोगी होगा कि बोध ज्ञान का पूर्ववर्ती है और बोध एक यान्त्रिक जैविक प्रतिक्रिया है। किसी भी वस्तु के बारे में सवाल करने वाले को पहले उस से अभिज्ञ होना आवश्यक है, और इस प्रकार प्रारम्भ अन्वेषण की प्रक्रिया में वह उस वस्तु की निर्मिति उस के गुणधर्म और अन्य वस्तुओं से उस के सम्बन्धों की बाबत क्रमशः सुनिश्चित ज्ञान प्राप्त करता जाता है। तथापि, आदिम बोध सीधे सही ज्ञान और विवेकपूर्ण निर्णय की ओर नहीं ले जाता। इस प्रक्रिया के लिए एक न्यूनतम सांस्कृतिक प्रगति और तकनीकी उपकरण आवश्यक हैं। इन के अभाव में अन्वेषण का स्थान चिन्तन ले लेता है जिस का परिणाम ज्ञान के बजाय रहस्यमयीकरण होता है। इसलिए अनगढ़ सामान्य बोध अर्थात् यह सहज विश्वास, कि जब किसी वस्तु को देखते हैं तो वस्तु ही को देखते हैं सभी प्रकार की असंगत धारणाओं को जन्म देता है। लेकिन व्यवस्थित सामान्य बोध अलग चीज है। वह विवेकयुक्त, स्वस्थ आदिम और तत्त्वमीमांसीय बोध है।

विज्ञान को व्यवस्थित सामान्य बोध के रूप में परिभाषित करते हुए हक्सले ने घोषणा की विज्ञान द्वारा अर्जित व्यापक परिणाम हम में से प्रत्येक द्वारा जीवन के साधारणतम मामलों में प्रयुक्त मानसिक प्रक्रियाओं के अतिरिक्त किन्हीं रहस्यमय तरीकों या अन्य मानसिक प्रक्रियाओं द्वारा उपलब्ध नहीं हुए हैं। विज्ञान का व्यक्ति

उन्हीं तरीकों को सावधान यथातथ्यता के साथ इस्तेमाल करता है जिन का हम आमतन हर वक्त असावधानपूर्वक प्रयोग करते रहते है। इस से व्यवस्थित सामान्य बोध पद का तात्पर्य स्पष्ट और दो टूक हो जाता है।

वैज्ञानिक ज्ञान पर्यवेक्षण प्रयोग मनन, चयन और सयोजन का परिणाम है। इस प्रक्रिया में बुद्धि की भूमिका साफ है और वह किसी भी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। इस प्रक्रिया में सावधान यथातथ्यता के लिए बुद्धिवादी कठोरता और उच्च स्तर की मेधा होना अनिवार्य है। लेकिन ज्ञान की वस्तु की प्राथमिकता का महत्त्व स्पष्टत रेखांकित है।

सामान्य बोध विचित्रता पर अविश्वास करता है। वह रहस्यों और चमत्कारों से आसानी से नहीं ठगा जा सकता। वह प्रदत्त व्यवस्था में न समा सकने वाले घटना-व्यापार के लिए स्पष्टीकरण चाहता है। यह कारणता मे आदिम विश्वास है। सामान्य बोध सामान्य प्रक्रिया में घटित चीजों पर सहज विश्वास कर लेता है, लेकिन साधारण के घटित न होने या असाधारण के घटित होने पर उसे स्पष्टीकरण चाहिए। जगली विचारधारा पक्की नियतत्ववादी होती है। जादू, जडात्मवाद आदिम धर्म, सभी इसी सहज विश्वास से अकुरित होते हैं कि हर वस्तु के पीछे कोई कारण है। कारणता में विश्वास का चेतना की बुनावट में इस तरह अन्तर्ग्रथित होने की वजह स्वय जैविक विकास की प्रक्रिया का नियतत्ववादी होना है। सामान्य बोध की उत्पत्ति कुछ भी हो वह भौतिक अस्तित्व के अचूक बोध का निरूपण है—उस प्रारम्भिक तत्त्वमीमासीय बोध का जो विभेदन विशिष्टीकरण, आलोचन चयन वेधन और परिशोधन की अनवरत प्रक्रिया से क्रमश उपलब्ध ज्ञान के लिए अनिवार्य शर्त है।

आइनस्टाइन की भी साक्षी है कि नयी भौतिकी ने पुरानी काट की सामान्य बोध पद्धतियों को छोड नहीं दिया है। उस का कथन है कि सारे विज्ञान का प्रयोजन हमारे अनुभवों का समन्वय और उन्हे एक तर्कसम्मत व्यवस्था म समायोजित करना है। यह विज्ञान को बौद्धिक व्यायाम में घटा देना लग सकता है जैसा कि, उदाहरणार्थ दिराक का झुकाव है। लेकिन इस सक्षिप्त उद्धरण का द्वितीय पठन सभी प्रारम्भिक प्रभावों को मिटा देता है। अनुभव को केन्द्र में रखा गया है। अनुभव ही कच्चा माल उपलब्ध कराता है। अनुभव के द्वारा कच्चा माल उपलब्ध कराये बिना केवल मानसिक प्रक्रियाओं और रहस्यात्मक तरीकों से नयी भौतिकी के गूढ गणितीय सूत्रों को नहीं बुना जा सकता था। विज्ञान का उद्देश्य अनुभवों का एक तर्कसम्मत व्यवस्था में समायोजन होने के कारण स्पष्टतया अनुभव वैज्ञानिक ज्ञान का आधार है। किस का अनुभव ? के कृत्रिम सवाल का आइनस्टाइन का उत्तर दो टूक और अचूक है। वह पुरानी काट के सामान्य बोध में विश्वास करता है। वह कहता है कि बाह्य विश्व की भौतिक वास्तविकता के बारे में सन्देह व्यक्त करते हुए कोई भी वैज्ञानिक असल में स्वय पर विश्वास नहीं कर रहा होता है। भौतिक वास्तविकता में अविश्वास करते हुए

कोई भी भौतिकविज्ञानी नहीं हो सकता। कोई खगोलज्ञ उच्चशक्ति के दूरवीक्षण यन्त्रों से दूरस्थ तारों को ताकते हुए अपना पूरा जीवन क्यों बितायेगा यदि उस तारों के भौतिक अस्तित्व में ही विश्वास न हो? वह भौतिक पर्यवेक्षण और मापन के यन्त्रों के साथ क्यों माथापच्ची करेगा यदि वह निष्ठापूर्वक मानता हो कि वे तारे उस के दिमाग के आरोपण अथवा केवल गणितीय निर्मितियां हैं? अन्तर्दर्शन से भी उसे यही परिणाम मिल जायेगा। लेकिन न तो किसी खगोलज्ञ ने—एडिंगटन या जीन्स तक ने—अभी तक अपनी वेधशाला छोड़ी और न ही किसी भौतिकविज्ञानी ने अपनी प्रयोगशाला।

प्रत्यक्षवादी विज्ञान के आधुनिक विश्व के अकाल प्रौढ़ बालक के भोले यथार्थवाद पर कृपापूर्वक मुसकरा सकता है। लेकिन वह अस्तित्व के इस बुनियादी तथ्य की अवज्ञा नहीं कर सकता कि बोध ज्ञान से पहले हैं और वैज्ञानिक अन्वेषण को अनिवार्यत तत्त्वमीमांसा को ज्ञानमीमांसा से पहले रखना चाहिए।

नयी भौतिकी शास्त्रीय वैज्ञानिक पद्धति का अनुकरण करती है जो सारत ठोस सामान्य बोध से निर्देशित होने के कारण रहस्यों और चमत्कारों को सहन नहीं करती। अभी तक अज्ञात क्षेत्रों के अन्वेषण से सभी तरह के विचित्र तथ्यों को उद्घाटित किया जा सकता है। कुछ विचित्र घटित होते ही स्पष्टीकरण की जरूरत महसूस होने लगती है। सभी नये-पुराने उद्घाटित तथ्यों के एक तर्कसम्मत व्यवस्था में संयोजित होने तक अन्वेषण निरंतर चलता रहता है। इस बीच अनभिज्ञ लोग स्वभावत कुतूहल जगाते, सामान्य लोगों का ध्यान आकर्षित करते और वैज्ञानिक पद्धति की सीमा का अतिक्रमण करने को उन्मुख चिन्तन को प्रोत्साहित करते रहते हैं। लेकिन विज्ञान के लिए केवल ऐसी समस्या के प्रतीक हैं जो हल की जानी है, जो हल की जा सकती है और हल की जायेगी।

महत्तर ज्ञान के लिए नये तथ्यों का आविष्कार अनिवार्य शर्त है, और जब वे वास्तव में नयी तरह के हों तो पुराने सिद्धान्तों का संशोधन करना पड़ता है। नयी भौतिकी के आविष्कारों का दार्शनिक निहितार्थ रहस्यवाद को प्रोत्साहन करने के बजाय उस के बिल्कुल विपरीत है। सारे समकालीन रहस्यवादी-पराभौतिक चिन्तन के बजाय समय से आगे चलने वाले अमरीकी दार्शनिक चार्ल्स पियर्स का यह लेखांश हमारे भौतिकीय ज्ञान की वर्तमान स्थिति से अधिक सम्बन्धित है

अनुभव अचम्भों की एक शृंखला के माध्यम से सिखाता है। वास्तव में घटित के साथ हमारे स्पष्टीकरणों के संघर्ष के माध्यम से हम सीखते हैं। वैज्ञानिक प्रयोगों तक में हम उस प्रयोग से कुछ नहीं सीख पाते जो केवल अनुभवनिरपेक्ष प्राक्कल्पना की पुष्टि करता है एक नये उद्घाटन का विस्मय ही उल्लेखनीय है। साथ ही विस्मय का यह तत्त्व स्व और विश्व के बीच अन्तर्क्रिया का संकेत करता और इस प्रकार किसी भी तरह के विषयिगत प्रत्ययवाद का निषेध करता है।

जिस बाह्य विश्व के बिना भौतिकी सम्भव नहीं है उस की कठिनाई को सुलझाने के लिए एक और युक्ति भी है। लेकिन वह विषयिगत प्रत्ययवाद के मामले को बिगाड़ती ही है। प्राफेसर हर्मान वेल लिखता है भौतिकी का वास्तविकता की भौतिक वस्तु से कोई सम्बन्ध नहीं है, उस के ज्ञान का विषय वास्तविकता की एक रूपात्मक दृष्टि अथवा उस का वक्तव्य ही है। (स्पेस, टाइम एण्ड मैटर) बाह्य विश्व के प्रति यह रूपवादी अभिवृत्ति अस्तित्व के सवाल को हल नहीं करती न ही इस सवाल को उपेक्षा से दबाया जा सकता है। लेकिन मर्यादित वैज्ञानिक दार्शनिकीकरण से इनकार करता है। वह अभी भी श्रम-विभाजन को बनाये रखना चाहता है। वह कहता है मैंने अपना काम कर दिया है—वास्तविकता का वर्णन कर दिया अब दार्शनिक जो कुछ चाहता है उसे करने दो। केवल यही है कि वैज्ञानिक के वर्णन की लगभग पूर्णता दर्शन के लिए नगण्य गुंजाइश ही छोड़ती है। स्पष्टीकरण अकाट्य है। विज्ञान का अब वस्तु-सत् के प्रति श्रद्धावान होने की आवश्यकता नहीं है जिसे दर्शन ने उसकी पहुँच से परे कर रखा था। जब वर्णन वास्तविकता के गुणधर्म प्रकार्य और सम्बन्धों के बारे में सब कुछ बताता है तो वह उस की प्रकृति को उद्घाटित कर देता है। वास्तविकता की प्रकृति की व्याख्या उस के रूपों के वर्णन के प्रकाश में ही की जानी चाहिए—चाहे यह काम वैज्ञानिक करे या दार्शनिक। यदि दार्शनिक प्रकाश को नहीं देख पाता और मूर्खतापूर्वक अन्धेरे में टटोलता रहता है तो स्वयं वैज्ञानिक को ही दार्शनिकीकरण करना चाहिए। यह केवल औपचारिकता का ही सवाल है। वैज्ञानिक का वर्णन व्याख्या हो गया है।

वेल के कथन का वास्तविक तात्पर्य यह है कि भौतिकी केवल सम्भवन की प्रक्रिया का ही वर्णन कर सकती है सत्त्व एक पराभौतिक अवधारणा है जिसे भौतिकी के उद्देश्य से नहीं मान लेना चाहिए। लेकिन सत्त्व और सम्भवन की द्वैतवादी मान्यता को दबा कर ही सत्त्व की पराभौतिक अवधारणा को वास्तव में मिटाया जा सकता है। इस के लिए पदार्थ की गतिशील अवधारणा की अपेक्षा होती है। नयी भौतिकी इस माँग को पूरा करती है। उस ने यह आविष्कृत किया है कि विश्व को अनस्तित्व से अलग करने वाली चीज एक ही साथ सत्त्व और सम्भवन है। परम सत्त्व की केवल अमूर्त कल्पना की जा सकती है। सम्भवन सत्त्व का सार है। विश्व की वस्तु स्थितिशील नहीं, गतिशील है। वह कभी भी निष्क्रिय अवस्था में नहीं है। वह जहाँ कहीं भी है सम्भवन की अवस्था में है। सम्भवन के अभाव में केवल अनस्तित्व है सत्त्व सम्भवन में ही वास्तविक होता है। लेकिन दूसरा ओर, परम सत्त्व अर्थात् सम्भवन से पृथक् सत्त्व तर्कशास्त्रीय धारणा है जब कि सम्भवन सत्त्व की तर्कसम्मत पूर्वधारणा करता है। सत्त्व की पृष्ठभूमि में ही उस का घटित होना सम्भव है।

जान्स भी आइनस्टाइन की इस बात की पुष्टि करता है कि जब भौतिकविज्ञानी भौतिक विश्व को रहस्य बताता है तो वह स्वयं पर भी विश्वास नहीं कर रहा होता। नयी भौतिकी की स्थिति को हाइजेनबर्ग के शब्दों में बताते हुए वह स्वीकार करता

है इस का तात्पर्य किसी भी तरह यह सुझाना नहीं है कि वस्तुगत प्रकृति का अस्तित्व ही नहीं लेकिन केवल यह कि वह अभी हमारा प्रयोजन नहीं है।' (दि बैकग्राउण्ड ऑफ साइन्स) अप्रतिष्ठा बाह्य विश्व की वास्तविकता को ले कर नहीं बल्कि बाह्य विश्व की प्रकृति को ले कर है। पुरानी सामान्य बोध-दृष्टि के स्थान पर अब हमारे सम्मुख सन्देहवादी अप्रतिबद्ध और अर्ध प्रत्ययवादी सिद्धान्तों का वैविध्य रखा गया है।

देकार्त ने कहा मुझे पदार्थ और गति दो और मैं विश्व की रचना कर दूंगा। एडिंगटन इस में संशोधन करता है मुझे एक विश्व दो—ऐसा विश्व जिस में सम्बन्ध हों—और मैं पदार्थ और गति की रचना कर दूंगा।' (स्पेस टाइम एण्ड ग्रेविटेशन) सम्भवतः वह कहना यह चाहता है कि पदार्थ और गति वैज्ञानिक के दिमाग की उपज है। लेकिन यहां सम्बन्धों का होना जरूरी है और सम्बन्धों के लिए सम्बन्धित चीजों का होना आवश्यक शर्त है। शास्त्रीय भौतिकी की वास्तविकता के ठोस पिण्डों की तरह स्थूल चाहे न हों लेकिन कुछ तो होना चाहिए जो सम्बन्धित हो। अर्थात् तब भी एक विश्व की जरूरत होगी जिस का वस्तुगत अस्तित्व हो। ऐसी स्थिति में एडिंगटन का असल अभिप्राय यही है कि नयी भौतिकी के इस भौतिक विश्व के विश्लेषण ने शास्त्रीय भौतिकी के घटकों से भी अधिक सूक्ष्म घटकों का पता लगा लिया है। पदार्थ और गति अंतिम सवर्ग और प्रारम्भिक अपरिभाष्य नहीं रहते।

इसी प्रकार व्यवस्था घटनाएँ निरपेक्ष वस्तु , चतुरायामीय सातत्यक में तानिका आवेग 'दिक् को भरने वाला कुछ'—पदार्थ के पुरानी धारणा के ये सभी चित्रात्मक विकल्प हमारे मस्तिष्क से बाहर अस्तित्वमान किसी वस्तु की ओर संकेत करते हैं—कोई ऐसी वस्तु जो दृश्यमान विश्व के आधार को अनस्तित्व से अलग करती हो।

सवाल ऐसी किसी वस्तु की प्रकृति के बारे में है जिस के अस्तित्व को लेकर शंका नहीं की जाती।

यदि वह अभौतिक है तो ऐसा कहते क्यों नहीं ? लेकिन ऐसा करना एक खतरनाक दृष्टिकोण अपनाना होगा। परम प्रत्ययवाद एक दुधारी तलवार है। वह पदार्थ को मुख्य द्वार से निकाल कर पिछवाड़े से वापस अन्दर ले लेता है। भौतिक विश्व को एक आध्यात्मिक वास्तविकता में घटा देने के बजाय परम प्रत्ययवाद उस का वैधीकरण कर देता है। एक परम प्रत्यय के निर्गमन क्रिस्टलीकरण और निगमन के रूप में भौतिक वस्तुएँ माया नहीं अमता वास्तविकता हो जाती हैं। और ज्यों ही आप शैतान को प्रवेश दे देते हैं वह प्रमुख हैसियत पा लेता है। प्लेटो देकार्त हेगेल—इन सब ने भौतिकवाद के उद्देश्य को ही पूरा किया। हमारे समय के वैज्ञानिक अध्यात्मवादी अपने मामले का बर्बाद किये बिना कोई सार्थक और संगत रुख नहीं अपना सकते। इसलिए रहस्यवाद के प्रति उन का यह प्रेम है जो ममलों का और उलझा देता है।

अध्याय चार

नयी भौतिकी

शास्त्रीय भौतिकी ने विश्व की तस्वीर कुछ इस तरह बनायी थी पदार्थ स्थिर द्रव्यमान वाले अविभाज्य कणो से बना है। ये कण काल में सदैव रहते हैं और काल के प्रत्येक क्षण में ये दिक् में एक निश्चित स्थान पर रहते हैं। प्रत्येक कण दूसरे कणों पर अपने बल का प्रभाव डालता है जिस का परिणाम गतिवर्धन अर्थात् अपने सरलरेखीय पथ से उन का विचलन होना है। यह गतिवर्धन भौतिक संस्थानों के द्रव्यमान के अनुपात में होता है। सारी भौतिक व्यवस्थाएं—तारे, ग्रह, पत्थर, पेड़ पशु मनुष्य—पूर्णतः नियतत्ववादी नियमों के अनुसार दिक्काल में सातत्य रखने वाले पारस्परिक प्रभाव डाल रहे इन अविभाज्य कणों का कमोबेश जटिल संयोजन हैं।

नयी भौतिकी का विश्व प्रोटानों और इलेक्ट्रानों से बना है। वे शास्त्रीय भौतिकी के द्रव्यात्मक कण अणु के घटक हैं। उस के घटक होने के नाते प्रोटान और इलेक्ट्रान को

भी भौतिक वस्तु होना चाहिए। लेकिन वे—और विशेषतया इलेक्ट्रॉन, जो शायद अधिक बुनियादी इकाई निकलेगा—शास्त्रीय भौतिकी के द्रव्यमान कणों की तरह नहीं हैं क्यो कि दिक्काल में उन का सातत्य नहीं है, और सातत्य के बिना यह स्थापित करना सम्भव नहीं है कि उन की आपसा अन्तर्क्रियाए किन्हीं सुनिश्चित नियतत्ववादी नियमों स सचालित हैं।

सतह पर यह भिन्नता विचारणीय बल्कि आधारभूत लगती है। नयी भौतिकी का विश्व ऐसी क्षीण वस्तु से बना लगता है जो पदार्थ और ऊर्जा की सीमारेखा पर मडराता रहता है। इस मायावी वस्तु की वास्तविक इकाइया दिक् में कोई स्पष्ट स्थान और काल म सातत्य न होने के कारण नियतत्ववाद का निषेध करती दिखती हैं। यदि नियतत्ववाद जाता है तो ब्रह्माण्ड की यान्त्रिक अवधारणा को भी चले जाना होगा। और इस सब से ऊपर दिक् और काल की अवधारणाओं मे भी वास्तविक क्रान्तिकारी परिवर्तन हो गया है। परम दिक् और काल के एकरूप प्रवाह की विदाई हो चुकी है। दो वस्तुओं के बीच स्थानिक और कालिक विलगाव सभी पर्यवेक्षकों के लिए समान नहीं है। इस दिशा में आगे बढने पर तस्वीर और भी उलझनभरी है। दिक् वक्र है। काल का कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं है। वह दिक् के साथ मिश्रित है। निश्चय ही दिक् काल और पदार्थ—तीनों एक चतुरायामीय सातत्यक में विलीन है जहां घटनाएं घटित होती रहती हैं।

ईथर का नयी भौतिकी के विश्व से निष्कासित कर दिया गया है और यही अपमान ब्रह्माण्ड के एक पुराने सदस्य अर्थात् न्यूटन के गुरुत्वाकर्षण के बल को सहना पडा है। सर्वाधिक क्षोभकारी आविष्कार यह है कि ऊर्जा का सतत प्रवाह नहीं होता उस की सरचना आणविक है। क्वाटम व्यापार ने आधुनिक भौतिक ज्ञान के किसी ऐसी तर्कसम्मत व्यवस्था में समायोजन के सब प्रयासों को विफल कर दिया है जिस की कडी शास्त्रीय भौतिकी के सिद्धान्तों से जुडता हो। क्वाटम व्यापार न कवल पुराने भौतिकीय सिद्धातों से बेमेल है, वह सापेक्षता के सिद्धान्त का भी प्रत्याख्यान करता है। सापेक्षता का सिद्धान्त ब्रह्माण्डीय यन्त्रविन्यास और सभी ब्रह्माण्डीय घटनाओं में सातत्य के तथ्य को खोज निकालता है जब कि क्वाटम व्यापार असातत्य का सकेत करता है।

इन चकरा देने वाले तथ्यों को सरलता से एक बड़े रहस्यमय विश्व चित्र में बुना जा कर इस धारणा को समर्थन दिया जा सकता है कि नयी भौतिकी ने अतीत की भोला मान्यताओं तथा अनगढ़, यान्त्रिक, नियतत्ववादी भौतिकवादी सिद्धान्तों का खण्डन कर के विश्व की रहस्यवादी धारणा क लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर दा है ताकि वैज्ञानिक आधार पर धर्म को पुनर्जीवित किया जा सके।

नया भौतिकी में ऐसा नया कुछ भा नहीं है। यदि हम नया भौतिकी के विश्व को निकट स देखें ता नये रूप में पुराने मित्रों को हा पायेंगे। निश्चय ही नया भौतिकी क

सिद्धान्त शास्त्रीय भौतिकी के सिद्धान्तों की तुलना में बहुत आग हैं। इस अर्थ में वे निश्चय ही नये हैं। भौतिक शोध की पिछली आधी शताब्दी के दौरान हुए आविष्कारों क परिणामस्वरूप विराट विश्व और अणुविश्व दोनों हा स्तरों पर विश्व क सम्बन्ध में हमारा ज्ञान आश्चर्यजनक ढग स बढ़ा है। लकिन नय सिद्धान्त पुरान सिद्धान्तों के नैरन्तर्य में हो हैं व पुरान सिद्धान्तों के आधार पर ही गढे गय हैं। व परस्पर ऐकान्तिक नहीं हैं। पुराने सिद्धान्तों को गलत कह कर फेंका नहीं गया है। पुरान सिद्धान्तों के आधार पर किय गये अन्वेषण में मिला नयी सामग्री के प्रकाश में उन का सुधार, सशोधन परिष्करण और विस्तार किया गया है।

आधुनिक भौतिकीय शोध द्वारा शास्त्राय भौतिकी के सिद्धान्तों के गलत पाये जाने की चर्चाओं की निन्दा करत हुए प्रोफ्सर फ्रेडरिक साडी का कथन है प्रयागात्मक वैज्ञानिक आविष्कारों में एक निश्चित स्थायित्व हाता है जिस पर सदैव विश्वास नहीं किया जाता। प्रयोगात्मक ज्ञान म कोई भी महत्त्वपूर्ण परिवर्धन—चाहे वह रॉबर्ट बॉयल के समय हुआ हो या कल—कभी भी विस्थापित नहीं किया जा सकता। दृष्टिकोण बदल सकते हैं प्रयोगात्मक ज्ञान को समझाने और व्याख्या करने वाले सिद्धान्तों की अपनी किशोरावस्था, वयस्कता और वृद्धावस्था हा सकती है लेकिन इमारत की रूपरेखा—विचारो के कन्द्र में स्थित प्रयोगसिद्ध तथ्य—इतना मजबूत होती है कि उस के ध्वस्त होने का कोई डर नहीं रहता। आज की तरह यदि कभी विज्ञान की नींवों का अधिक गहरे और अधिक मूलभूत स्थान पर खिसकाया जाता है तो भी तथ्या का प्रयोगात्मक आधार सुरक्षित रहता है। रेडियो तत्वों के अन्तर्आणविक परिवर्तनों के परिणामस्वरूप रसायन विज्ञान के सम्पूर्ण भवन के विनाश के कगार पर खडा होने का विचार हमेशा इतना असगत रहा है कि उस का जवाब दन की भा जरूरत नहीं है।' और भा कभी-कभी विज्ञान क लागों में भी अपनी विशेषज्ञता के अतिरिक्त अन्य विषयों का सामान्यीकरण करते हुए असावधान चर्चा होती है कि एक दौर की वैज्ञानिक परिकल्पनाएं अगले दौर के लिए हास्यास्पद हो जाती हैं। लेकिन ऐसी चर्चाएं स्वय अपने दौर में उन लोगों के लिए हास्यास्पद हाती हैं जो कोई राय बनाने के लिए सर्वाधिक योग्य होते हैं। ('साइन्स एण्ड लाइफ)

सापेक्षता का सिद्धान्त और क्वाटम सिद्धान्त नयी भौतिकी की रचना करते हैं। सामान्य तौर पर कहा जाय तो सापेक्षता का सिद्धान्त सूक्ष्मदर्शीय तत्वों, घटनाओं और सम्बन्धों का अध्ययन करता है। दोनों सिद्धान्तों में से निश्चित दार्शनिक निष्कर्ष का आधार अभी केवल सापेक्षता का सिद्धान्त ही हो सकता है जा व्यवहारत एक तर्कसम्मत स्वत पूर्ण सिद्धान्त है। क्वाटम सिद्धान्त अभी तक परिवर्तन की अवस्था में है। इस क अन्तर्गत आन वाले तथ्यों को अभा पूरा तरह ऐसा सैद्धान्तिक रूप नहीं दिया जा सका है जा कामचलाऊ उपयोगिता से अधिक मूल्यवान दार्शनिक निष्कर्षों के लिए आधार प्रस्तुत कर सके। नया भौतिकी की क्रान्तिकारी विशेषताएँ क्वाटम सिद्धान्त

की परिधि म आती हैं। वे उपाणु विश्व की विशेषताएँ हैं। अपने अन्वेषण के दौरान अज्ञात क्षेत्रों में प्रवेश करने स नयी भौतिकी ने कुछ नये और विचित्र तथ्य खोज निकाले हैं जो तत्काल किसी पुराने सैद्धान्तिक ढांचे में समंजित नहीं होते। इन नये तथ्यों के तत्त्वमीमांसीय तथ्यों के रूप में स्थापित होने और उन के पूर्ण व्यवस्थित होने के साथ ही नये सिद्धान्तों का विकास होना होगा। लेकिन वे पुराने सिद्धान्तों को विस्थापित नहीं करेंगे वे केवल उन के सम्पूरक होंगे। दोनों मिल कर ही भौतिक ज्ञान के समूचे निकाय को संघटित करेंगे।

विज्ञान के नियम कभी परम नहीं होते। उन की सापेक्ष वैधता प्रकृति के नियमों से उन की निकटता में निहित होती है। नयी भौतिकी द्वारा निरूपित नियम यह नहीं सिद्ध करते कि शास्त्रीय भौतिकी के नियम झूठे हैं। वे अपनी परिधि में सच्च हैं। नये नियम उन से आगे जाते हैं। वे प्रकृति के नियमों स और अधिक निकटता जताते हैं।

वैज्ञानिक दृष्टि से सापेक्षता के सिद्धान्त की आधारभूत उपलब्धि गुरुत्वाकर्षण और विद्युत चुम्बकत्व के बीच सामंजस्य है। यह सामंजस्य गेलीलियो के जमाने से पिछले तीन सौ वर्षों के दौरान पर्यवेक्षण और प्रयोगों के माध्यम से शनै शनै प्राप्त प्रकृति से सम्बन्धित ज्ञान के विशाल भण्डार के महान समन्वय का प्रतीक है। इस समन्वय के लिए मार्ग बनाने का काम शास्त्रीय भौतिकी की बुनियादी परिकल्पनाओं के आधार पर किये गये सैद्धान्तिक और प्रयोगात्मक शोधों के संचित परिणाम द्वारा किया गया। उन शोधों की प्रक्रिया में कुछ ऐसे तथ्य मिले और ऐसे विचार निरूपित हुए जिन का शास्त्रीय भौतिकी के सैद्धांतिक ढांचे में संतोषजनक समावेश और व्याख्यान नहीं हो सकता था। सापेक्षता के सिद्धान्त के प्रवेश से यह व्याख्या सम्भव हो सकी।

न्यूटनीय गतिकी और मैक्सवेल के समीकरणों से प्रकट ऊर्जा के विद्युतचुम्बकीय संचरण के नियमों में विसंगति को शास्त्रीय भौतिकी के कुछ परिकल्पित संवर्गों की अवहेलना कर के मिटाया जा सकता है। पूर्व मान्यताओं या धारणाओं को अनुभवगम्य ज्ञान के प्रकाश में अनावश्यक समझा जाने पर छोड़ा जा सकता है—चाहे अतीत में वे सफल शोध का प्रस्थान बिन्दु रही हों अथवा प्रकृति के ज्ञान के अन्तरालों को भरती रही हों। उदाहरणार्थ, गुरुत्वाकर्षण बल और ईथर ऐसे ही कामचलाऊ परिकाल्पनिक संवर्ग थे। हमारे ज्ञान की प्रगति में अन्तरालों के न रहने पर भौतिकी ऐसे संवर्गों के बिना भी काम चला सकती थी। शास्त्रीय सिद्धान्तों के दो मुख्य निकायों न्यूटनीय यन्त्र विन्यास और विद्युतचुम्बकत्व के बीच का भेद मुख्य रूप से क्रमश उन की परिकल्पनाओं गुरुत्वाकर्षण बल और ईथर के कारण था, जब कि दोनों मिल कर व्यवहारत सारे पर्यवेक्षणीय घटना व्यापार की व्याख्या कर सकते थे। पहल का निहितार्थ दूरी पर क्रिया है जब कि दूसरा एक निरन्तर माध्यम की पूर्वधारणा करता है।

सापेक्षता के सिद्धान्त के कारण भौतिकी अनावश्यक परिकल्पनाओं के कंकड़-पत्थर हटाने में कामयाब हो गयी। परिणामस्वरूप भौतिक ज्ञान का सम्पूर्ण निकाय एक

समन्वित पूर्ण में सयोजित हो गया—ज्ञान के एक उच्चतर स्तर प्रकृति के वस्तुगत सत्यों के गहरे नैकट्य का प्रतीक।

जहां तक गुरुत्वाकर्षण बल का सवाल है आइनस्टाइन द्वारा उस के अन्तिम अस्वीकार का रास्ता किरकोफ तथा मैक के सैद्धान्तिक कार्यों द्वारा तैयार कर दिया गया था। किरकोफ एक शास्त्रीय भौतिकविज्ञानी था। न्यूटनीय गतिकी की अपनी पूरी निषेधात्मक आलोचना के कारण मैक पुरानी और नयी भौतिकी की सामारेखा पर खड़ा था। दोनों ने मिल कर यन्त्रविन्यास का ऐसा सिद्धान्त विकसित किया जिस न न्यूटन द्वारा कल्पित बल के सवर्ग की छुट्टी कर दी। उन के सिद्धान्त को एक शास्त्रीयतावादी हर्टज द्वारा इस प्रकार परिष्कृत और परिशुद्ध किया गया कि उस का सीधा परिणाम यह निकला कि गति का एक ही नियम है जो आश्चर्यजनक रूप से आइनस्टाइन की गतिकी के निकट पहुंचता है, जिस के अनुसार प्रत्येक भौतिक व्यवस्था एक अल्पान्तरी रैखिकी में घूमती है। बर्ट्रेण्ड रसेल ने सकेत किया है कि यद्यपि यह सारा विकास सारत न्यूटन से अलग नहीं जाता, लेकिन इस ने सापेक्षता गतिकी के लिए रास्ता तैयार कर दिया। दूसरे शब्दों में, शास्त्रीय भौतिकी और सापेक्षता के सिद्धान्तों में एक नैरन्तर्य है। निश्चय ही, रसेल तो निम्नोद्धृत घोषणा करने की हद तक जाता है जो आधुनिक भौतिक विज्ञान और इसी कारण प्राकृतिक दर्शन के विकास के सम्पूर्ण इतिहास में अन्तर्निहित नैरन्तर्य के तथ्य पर और अधिक बल देती है।

वह लिखता है 'और अब जब कि सिद्धान्त लगभग पूर्ण है, कोई भी देख सकता है कि सिद्धान्तत इस का आविष्कार गेलीलियो द्वारा या हर हालत में प्रकाश के वेग की जानकारी के बाद तो हो ही सकता था। यह न्यूटन की अपेक्षा एक बेहतर तकनीक एक बेहतर दर्शन का प्रतिनिधित्व करता है। इस की एक अत्यन्त उल्लेखनीय विशेषता तकनीक का दर्शन में रूपान्तरण है। (दि एनेलेसिस ऑफ मैटर)

इस प्रकार सापेक्षता का सिद्धान्त शास्त्रीय भौतिकी का तर्कसगत परिणाम है, उस की निर्मिति में गेलीलियो के जमाने से प्राप्त हो रही प्रयोगात्मक सामग्री और सैद्धान्तिक ज्ञान के सम्पूर्ण भण्डार का इस्तेमाल हुआ है। दार्शनिक स्तर पर वह न्यूटन की यान्त्रिक ब्रह्माण्डिकी का विकास है न कि उस का नकार। बर्ट्रेण्ड रसेल का मानना है कि सापेक्षता के सिद्धान्त से भौतिकवादी दर्शन को गहरा धक्का लगा है। यदि वह दार्शनिक स्तर पर न्यूटन के प्रकृति दर्शन से केवल बेहतर ही है, जैसा उपर्युक्त उद्धरण में स्वय रसेल स्पष्टतया कहता है, तो फर्क केवल मात्रात्मक है, न कि गुणात्मक। सापेक्षता का सिद्धान्त दार्शनिक स्तर पर प्रत्ययवाद अथवा अन्य किसी भौतिकवाद विरोधी दर्शन के पक्ष में भौतिकवादी प्राकृतिक दर्शन को अस्वीकार नहीं करता। वह भौतिकवाद को कुछ दोषों से मुक्त करता और भौतिकवादी दर्शन को अनुभवसिद्ध भौतिक ज्ञान की दृढ़तर आधारभूमि पर स्थापित करता है। रसेल के

नहीं है। काल और दिक् के बारे में सारी रहस्यमयता इस आविष्कार के परिणामस्वरूप लुप्त हो गयी कि वे हमारे अनुभव में केवल सापेक्ष सत्ता के रूप में ही प्रवेश पाते हैं। उन का परमत्व निश्चय ही एक खोखली अवधारणा है। रहस्यवाद का जन्म परम को परिभाषित करने के प्रयत्न से ही होता है। परम अपरिभाषेय ही रहेगा, यदि वह वास्तव में परम है। काल और दिक् की शास्त्रीय दार्शनिक परिभाषाओं की तरह अपरिभाषेय की कोई भी परिभाषा रहस्य से आच्छादित और गूढ़ शब्दावली में व्यक्त होने को बाध्य है।

हम केवल वही परिभाषित कर सकते हैं जो हम जानते हैं। सुनिश्चित ज्ञान पर्यवेक्षण और प्रयोग से ही प्राप्त किया जा सकता है। दैशिक और कालिक घटना चक्र को सापेक्ष तत्त्वों की तरह—पदार्थ के प्रति उनकी सापेक्षता में ही—देखा और मापा जा सकता है। सापेक्षता का सिद्धान्त इन सवर्गों की परमवादी, भाववादी अवधारणाओं की अर्थहीनता को स्पष्ट करते हुए काल और दिक् की कष्टकारी समस्या को हल करता है। वह उन से सम्बन्धित सारे रहस्य को यह बता कर उघाड़ देता है कि अनुभवगम्य वास्तविकता के रूप में वे भौतिक सत्ता से मुक्त और उस के पूर्ववर्ती नहीं हो सकते—बल्कि उसी के गुणधर्म होने के कारण उन्हें परिभाषित, मापित तथा भौतिक वस्तुओं के परिवर्तनों और गतियों की सापेक्षता में अनुभव किया जा सकता है।

लेकिन विचार की पारम्परिक प्रणाली से बाहर झटक दिया जाना मानवीय मनोवृत्ति के लिए आघातकारी है। यदि उन्हें वास्तविकता न माने तो भ्रान्तियाँ रह नहीं सकतीं। एक बार वास्तविक समझ ली जाने पर भ्रान्तियाँ अनुभव की अवहेलना करने लग जाती हैं। दिक् और काल की परमत्ववादी अवधारणा मानव मन में इतने गहरे स्तरों पर अन्तस्स्थापित है कि उस का सरलता से उन्मूलन नहीं किया जा सकता। एक औसत मरणधर्मा के लिए वह एक दार्शनिक अवधारणा नहीं बल्कि आस्था का सूत्र है। इसलिए वे दिक् और काल का उस तरह मानसदर्शन नहीं कर सकते जिस तरह व्यवस्थित पर्यवेक्षण और परिष्कृत प्रयोग के माध्यम से उन्हें आविष्कृत किया गया है।

इसलिए नये भौतिक सिद्धान्त रहस्यकारी नहीं हैं। इस के विपरीत वे प्रकृति के सत्यों पर नयी कौंध डालते हैं लेकिन यह नयी कौंध स्वाभाविक ही प्रारम्भ में हमारी आँखों को चौंधिया देती है। हम अनुभवगम्य प्रत्यक्ष वास्तविकता के लिए आदर्श अवधारणाओं को छोड़ने के लिए अनिच्छुक रहते हैं। नयी भौतिकी का क्रान्तिकारी महत्त्व यह है कि वह हमें पूर्वमान्य पराभौतिक अवधारणाओं को अनुभूत तथ्यों के अनुसार बदलने के लिए बाध्य करती है। सापेक्षता का सिद्धान्त तकनीकी अर्थ में भौतिकी के एक सिद्धान्त से कुछ अधिक है। वह पिछले तीन सौ सालों के वैज्ञानिक शोध से अर्जित भौतिक ज्ञान के सम्पूर्ण भण्डार के ठोस आधार पर निर्मित एक ब्रह्माण्डीय अवधारणा है। इसलिए उस का ज्ञानमीमांसीय महत्त्व बहुत दूरगामी है।

वह एक व्यापक दार्शनिक पद्धति है—आनुमानिक चिन्तन की बन्द पद्धति नहीं बल्कि अनुभवसिद्ध ज्ञान के प्रकाश में सारे प्रणित घटना-चक्र की सुसगत व्याख्या।

हमारे चिन्तन और भाषा को आणविक भौतिकी के आविष्कारों के अनुसार ढालना बहुत मुश्किल है क्यों कि उन का वास्ता भौतिक विश्व की अब तक अकल्पित, पूर्णतया नयी अवस्थाओं से है। सापेक्षता का सिद्धान्त भौतिक शोध के एक पूरे दौर का परमोत्कर्ष है। इस के विपरीत क्वाटम सिद्धान्त भौतिक अन्वेषण के एक नये क्षेत्र का उद्घाटन है। शास्त्रीय भौतिकी ने उसे चलाने वाले सामान्य नियमों के आविष्कार के उद्देश्य से प्रकृति के वैविध्यपूर्ण घटना चक्र का अध्ययन किया। उस ने पदार्थ को पूर्वमान्य कर लिया। पदार्थ और ऊर्जा शास्त्रीय भौतिकी की आधारभूत परिकल्पनाएँ अर्थात् उस के प्रारम्भिक अपरिभाषेय थे। इन आधारभूत सवर्गों की आन्तरिक सरचना आज के भौतिक शोध का विषय है। सार-तत्त्व की पराभौतिक अवधारणा घरिया में झोंकी जा चुकी है। पदार्थ की अवधारणा को भौतिक विश्व की बुनियादी इकाइयों की सरचना के सुनिश्चित ज्ञान से समजित करना होगा। दार्शनिक सार-तत्त्व की प्रकृति के बारे में विवाद करते रहे। दकार्त के नेतृत्व में कुछ ने उसे सर्वव्यापी माना अन्य ने लाइबनित्स के मोनड—परिवर्तनशील सार-तत्त्व—के सिद्धान्त में व्यक्त कणिकामय अवधारणा का समर्थन किया। आणविक भौतिकी आनुमानिक दर्शन के इस पुराने विवाद को सुलझाने के रास्ते पर है और वह सार-तत्त्व के दोनों ही सिद्धान्तों के समन्वय का वादा करती है। कारण यह कि भौतिक विश्व की बुनियादी इकाइयों में तरग एव कण दोनों ही के गुणधर्म पाये गये हैं।

स्वाभाविक ही सार-तत्त्व की इस नयी अवधारणा को पूर्णरूपेण समझ पाना अत्यन्त कठिन है जो पदार्थ और ऊर्जा को सारे प्राकृतिक घटना-चक्र की पृष्ठभूमि के रूप मे एक गतिशील एकात्मक आद्य, भौतिक सत्ता मे विलीन कर देती है। यह बहुत कठिन है क्यों कि इसे दैनन्दिन अनुभव की शब्दावली में नहीं समझा जा सकता। यह अवधारणा अत्यधिक अमूर्त है और इसे केवल गूढ़ गणितीय भाषा में ही व्यक्त किया जा सकता है। इसीलिए आणविक भौतिकी के सिद्धान्त मानसिक निर्मितियाँ लगते हैं। लेकिन अन्य वैज्ञानिक सिद्धान्तों की तरह उन्हें भी प्रेक्षण और प्रयोग से निकाला गया है।

यहाँ हम दर्शन की पुरानी समस्या—बोध की समस्या—के सम्मुख हैं। नयी भौतिकी के सिद्धान्त प्रत्यक्ष बोध से उत्पन्न नहीं हैं। लेकिन इतनी अमूर्त प्रकृति के इन सिद्धान्तों का प्रयोगात्मक सत्यापन यह सिद्ध करता है कि वे विषयगत भौतिक वास्तविकताओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। दूसरी ओर किसी भी अमूर्तन में बड़ा विषयिगत तत्त्व अन्तर्विष्ट होता है। इस प्रकार, भौतिक शोध उस बिन्दु की ओर अग्रसर है जहाँ विषयिगत और विषयगत की विभेदक रेखा लुप्त हो जाती है। यदि यह अनुभवगम्य आविष्कार हो जाता है कि अन्ततोगत्वा विषयिगत का विषयगत से भेद नहीं किया जा

सकता तो दर्शन की सर्वाधिक उलझनपूर्ण समस्या अर्थात् ज्ञानमीमांसात्मक समस्या हल हो जायगी। आधुनिक भौतिक शोध इस तथ्य की अनुभवसिद्धि की ओर बढ़ रहा है कि बाह्य विश्व एक मिथ्या नामकरण है। हम अपने अनुभव के विश्व के अभिन्न अंग हैं। हम विश्व को किसी बाहरी व्यक्ति की तरह नहीं देखते। हमारी चेतना, हमारा अहं, हमारा विवेक—ये सब विषयिनिष्ठ सवर्ग कथित बाह्य विश्व के रेशे रेशे में अपृथक् रूप से अन्तर्ग्रथित हैं। प्रकृति के ये विषयिनिष्ठ घटक विषयगत भौतिक विश्व की सम्पूर्ण ग्रंथि के अंश हैं। वे भौतिक विश्व की पृष्ठभूमि से उत्पन्न हैं और इसी कारण उस के बारे में ज्ञान प्राप्त करने के उपकरण हो सकते हैं। यदि चित्त पदार्थ से सारत भिन्न होता तो दोनों के बीच कोई सम्बन्ध सम्भव ही नहीं हो पाता, और ज्ञान असम्भव हो जाता। जीवविज्ञान हमें भौतिकवादी एकत्ववाद के इस आधारभूत तथ्य के बोध की ओर ले आये हैं। अब भौतिक शोध भी दूसरी ओर से—प्रकृति की बुनियादी इकाइयों की आन्तरिक संरचना के विश्लेषण के माध्यम से—इसी बिन्दु पर पहुँच रहा है।

अध्याय पाँच

दिक् और काल

क्वाटम भौतिकी के आविष्कारों द्वारा यह सनसनीखेज उद्घाटन हुआ समझा जाता है कि न तो भौतिक विश्व का आधार भौतिक है और न ही भौतिक घटनाओं के बीच कोई कारण सम्बन्ध है। सार-तत्त्व और कारणता के बिना विज्ञान कुछ नहीं कर सकता। इसलिए लगता है कि भौतिकी ने अनस्तित्व म से विश्व की रचना की है। क्या वह हमेशा विश्व को बहकावे में रखे रही है ? अणुविश्व के क्षेत्र में भौतिकीय शोध के परिणामों का परीक्षण दिखाता है कि स्थिति इतनी खराब नहीं है।

इस परीक्षण से पूर्व सापेक्षता के सिद्धान्त की मूर्तिभजक उपलब्धियों पर कुछ विचार करना उपयोगा होगा। इस के अतिरिक्त, मैं इस मत का हूँ कि सापेक्षता का भौतिक सिद्धान्त प्रकृति के सभी रहस्यों की कुजी बन सकता है और इस प्रकार उपाणविक भौतिकी की फिलहाल असमाधेय लगने वाली समस्याओं की दिशा में अभिगम का सकेत दे सकता है।

शास्त्रीय भौतिकी की सुन्दर इमारत को गिराने का कारण माने जाने वाले सब मूर्तिभजक विचार प्रेक्षित तथ्यों के निम्नलिखित सरल वक्तव्य का विकास हैं सभी गतियाँ सापेक्ष हैं पिण्ड एक दूसरे से सापेक्ष गति करते हे एक पिण्ड की रफ्तार दूसरे की सापेक्षता में मापी जाता है जो विश्रा त माना जाता हे लेकिन कोई पिण्ड परम विश्रान्ति में नहीं होता। यह देख पाना सरल है कि इस नय आविष्कार द्वारा काल और दिक् की अवधारणाओं पर कितना पूर्णत भिन्न रोशना पडता है। गति काल के प्रत्यय को बोधगम्य बनाती है। यदि गतियाँ सापेक्ष हैं तो काल परम या निरपेक्ष नहीं हो सकता। दूसरी ओर काल और दिक् सम्बद्ध अवधारणाएँ हैं। एक में क्रान्ति दूसरे को अप्रभावित नहीं छोड सकती।

लेकिन वास्तव में यह क्राति नहीं थी। न्यूटन स्वय इस तथ्य के प्रति सजग था कि कोई पिण्ड परम विश्राति की स्थिति में नहीं है। उसने वस्तुत लिखा यह सम्भव है कि दूरस्थ क्षेत्र में या शायद उन से बहुत परे कोई पिण्ड परम विश्रान्ति में हो लेकिन हमारे क्षेत्र में पिण्डों की पारस्परिक स्थिति से यह जानना असम्भव है कि उन म से किसी की भी उस दूरस्थ पिण्ड से वैसी ही स्थिति है। तब उस ने वक्तव्य दिया कि हमारे क्षेत्र में पिण्डों की स्थिति से परम विश्राति का निश्चय नहीं किया जा सकता।

इस से यह स्पष्ट है कि यदि न्यूटन आज पुन जीवित हो उठता तो सापेक्षता के सिद्धा त द्वारा प्रतीकित ब्रह्माण्ड की गतिशील दृष्टि उसे हक्का बक्का नहीं कर पाती। वह देख पाता कि उस के द्वारा जलायी रोशनी का अनुकरण करते हुए विज्ञान ने आकाश के दूरस्थ क्षेत्रो का अन्वेषण कर लिया और किसी भी पिण्ड को परम विश्रान्ति में नहीं पाया।

किसी पिण्ड की परम विश्रान्ति की असम्भाव्यता का निहितार्थ है परम वेग के मापन की असम्भाव्यता। इसलिए परम काल का लोप तर्कानुसारेण अपरिहार्य है।

सापेक्षता का सिद्धान्त दिक् के माध्यम से पिण्डों के परम वेग क मापन सम्बन्धी प्रयोगों के निषेधात्मक परिणाम से प्राप्त निष्कर्ष पर आधारित है। वह निषेधात्मक परिणाम की व्याख्या करता है। यह गौरतलब है कि न तो न्यूटन और न आइनस्टाइन द्वारा ही परम वेग के अस्तित्व स इनकार किया गया है, दोनों इस का आविष्कार असम्भव मानते हैं। इस का दार्शनिक निहितार्थ ज्ञानमीमासात्मक है न कि तत्त्वमीमासात्मक।

अपने परम दिक् और काल के बावजूद न्यूटनीय गतिकी परम वेग के मापने का कोई मानक नहीं प्रस्तावित करती। न्यूटन ने सर्वव्यापी सार तत्त्व की देकार्तीय अवधारणा को ख़ारिज कर दिया था। उस की पद्धति पदार्थ की आणविक अवधारणा पर आधारित थी। गतिमय पदार्थ उस का बुनियादी आधारतत्त्व था। न्यूटनीय यान्त्रिकी में गति के दो सरल नियम केन्द्रीय महत्त्व रखते हैं। पूरा पद्धति किसी भी चीज को परम विश्रान्ति में नहीं पाता। इस तरह गति की सापेक्षता न्यूटनीय सिद्धान्त में अन्तर्निहित है।

लकिन परम की पराभौतिक धारणा न केवल दार्शनिक बल्कि वैज्ञानिक चिन्तन पर भी प्रभावी था। (न्यूटन स्वय धर्मशास्त्रीय पूर्वग्रहों से भरा था।) इसलिए उस के ब्रह्माण्डीय प्रत्यय के तर्कसगत निष्कर्षों के बारे में स्पष्ट और निरन्तर विचार नहीं किया जा सका। प्रकृति के अधिक महत्तर और प्रत्यक्ष ज्ञान के प्रकाश में न्यूटनीय गतिकी के सापेक्षतावादी निहितार्थ क स्पष्ट होने से पहले ही भौतिकी को पराभौतिक परमवादी विचार के विरुद्ध अनुभवजन्य प्रमाण प्राप्त कर विकास के एक पूरे दौर से गुजर जाना था।

गति का प्रत्यय दो पिण्डों के बीच की दूरी में परिवर्तन से निकलता है। मैं किसी अन्य को अपने से दूर जाता हुआ समझता हूँ जब हमारे बीच की दूरी बढ़ती है। लेकिन अन्य व्यक्ति को भी होने वाला ठीक ऐसा ही अनुभव उसे भी यह मानने का अधिकारी बना देता है कि मैं गति में हूँ और वह विश्रान्ति में। क्यों कि गति का प्रत्यय बीच की दूरी में वृद्धि से उत्पन्न होता है, और अन्य व्यक्ति भी इस दूरी के बढ़ने का अनुभव करता है, इस कारण उस के लिए अपने को परम विश्रान्ति और मुझे गति में समझना पूर्णतया उचित है। उस के ऐसे दावे को तर्कानुसारेण नहीं झुठलाया जा सकता।

किसी भी पिण्ड की परम विश्रान्ति की अनुपस्थिति में परम वेग को नहीं मापा जा सकता। गति सदैव सापेक्ष है, और गति की अवधारणा के दूरी से अपृथक् रूप से जुड़े होने के कारण दूरी को भी सापेक्षता के प्रकाश में समझा जाना चाहिए। गति और दूरी की सापेक्षता के आविष्कार ने दिक् और काल की अवधारणा में क्रान्ति को अनिवार्य कर दिया, क्यों कि ये पराभौतिक सवर्ग हमारे अनुभव में प्रवेश करते तथा केवल दूरी और गति के अनुभवगम्य रूपों में ही भौतिक मापन के विषय बनते हैं। सापेक्षता के सिद्धान्त ने दिक् और काल को समझने का एक नया रास्ता दिखा कर माइकेलसन-मोर्ले प्रयोग के निषेधात्मक परिणाम से उत्पन्न सभी समस्याओं को हल कर दिया। उस ने बताया कि दिक् और काल पूर्वधारणा क अनुरूप स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं हैं बल्कि उसी पृष्ठभूमि में जटिलतापूर्वक अन्तर्ग्रथित हैं जिस पर सारा भौतिक कार्य-व्यापार घटित होता है। सापेक्षता के सिद्धान्त की बुनियादी दार्शनिक उपलब्धि दिक् और काल की अवधारणाओं में यह क्रान्ति घटित करना है।

परम काल और फलत परम दिक् की काल्पनिक प्रकृति को उजागर कर के सापेक्षता के सिद्धान्त ने दिक् और काल का एक चतुरायामीय सातत्यक में विलय कर दिया। प्रकटत दो भिन्न गुणात्मक अस्तित्वों का सयोग होने के कारण दिक्काल की नयी अवधारणा स्वाभाविक ही बहुत उलझनभरी है। तथापि, उसे दो दृष्टियों से समझा जा सकता है ज्यामितिक और दार्शनिक। लेकिन उसे एक सामान्यबोधीय धारणा की तरह भी समझा जा सकता है। सर जेम्स जीन्स एक चित्र प्रस्तुत करते हैं

'यदि प्रकृति का विषयनिष्ठ अध्ययन करना हो तो हमें स्पष्टत एक विषयगत चौखटे की जरूरत होगी जो दिक् मे हमारे रॉकेट की गति से मुक्त होगा। वह एक

चतुरायामीय दिक् से कुछ भी कम या अधिक नहीं होगा—किसी भी व्यक्ति के दैनन्दिन दिक् का चौथे आयाम—उसी व्यक्ति के सामान्य काल—द्वारा विस्तार। जब कोई व्यक्ति अपने द्वारा चुने गये दिक् को तदनुरूप काल से मिला देता है तो उसे उपलब्ध चतुरायामीय दिक् सदैव वही होगा। (दि बैकग्राउण्ड ऑफ मॉडर्न साइन्स)

काल का हमारा अनुभव किसी पिण्ड के बाह्य और आन्तरिक सम्बन्धों में परिवर्तन पर आधारित है इसलिए काल और दिक् की अन्तर्निर्भरता एक अनुभवगम्य तथ्य है। उन्हें एक गणितीय युक्ति की तरह मनमाने ढंग से नहीं मिला दिया गया है। वे प्रकृति में संयुक्त हैं। उन्हें अपने आधार पर अस्तित्वमान होने के अर्थ में स्वतन्त्र संवर्ग मानना एक गणितीय अमूर्तन है। क्यों कि दिक् और काल हमारे अनुभव में सदैव संयुक्त पाये जाते हैं उन्हें परम संवर्ग मानना स्पष्टतया एक स्वेच्छाचारी प्रक्रिया है। सवाल यह है ये प्रकटतः दो भिन्न संवर्ग किस प्रकार इतने जटिल रूप में अन्तर्ग्रथित हो जाते हैं? सापेक्षता भौतिकी इस का उत्तर दे कर एक ऐसी समस्या के समाधान में सहायक होती है जिस ने युगों तक दर्शन को उलझन में डाल रखा था।

दिक् और काल न सर्वांगीय अस्तित्व हैं न ही परम वास्तविकताएँ। उन का अस्तित्व एक ही स्रोत से उत्पन्न है जो तत्त्वमीमांसीय दृष्टि से उन का पूर्ववर्ती है। वे भौतिक अस्तित्व की वृत्तियाँ हैं। इसलिए प्रकटतः इतने भिन्न होते हुए भी अमूर्तन के सिवा वे सदैव जटिल अन्तर्ग्रथन में हैं। बुनियादी रूप से वे अभिन्न भौतिक वास्तविकता के—पदार्थ के क्रमशः ज्यामितिक और कालक्रमिक विस्तार या विस्तृति के प्रतीक हैं। दिक् पदार्थ का ज्यामितिक विस्तार है और काल उस का कालक्रमिक विस्तार।

हमारे दिमागों के पुरानी लीक का अभ्यस्त होने के कारण इस नये विचार को ग्रहण करना कठिन है। दिक्काल की इस नयी अवधारणा की उल्लेखनीय सरलता और तार्किक निर्दोषता को समझने के लिए कुछ चिन्तन आवश्यक है। निश्चय ही यह बहुत आश्चर्यजनक है कि युगों तक दार्शनिक इतनी स्पष्ट चीज को रहस्यमय बनाते रहे। दिक् को वस्तुओं का आधान माना गया क्यों कि वस्तुओं को कहीं होना चाहिए। सहज सामान्य बोध के आदिम तर्क ने स्थान या अवस्थिति को अस्तित्व का पूर्ववर्ती माना। आनुमानिक दर्शन कभी भी अपने शैशव के इस आदिम तर्क से आगे नहीं बढ़ पाया। लेकिन भ्रान्ति बिल्कुल स्पष्ट है।

यदि वस्तुओं को कहीं पर अस्तित्व में होना है तो स्वयं दिक् का भी कोई स्थान होना चाहिए। अन्यथा उस का अस्तित्व सम्भव नहीं है। इसलिए अस्तित्व के स्थान या अवस्थिति पर निर्भर होने का विचार एक पश्चगामी अनन्त में ले जाता है। अस्तित्व की बहुत पारम्परिक व्याख्या के अनुसार दिक् केवल विस्तार की तरह ही अस्तित्व में है लेकिन तर्कानुसारेण विस्तार किसी वस्तु को पूर्वमान्य करता है जिस का विस्तार किया गया है। दिक् की संरचना के बारे में यह धारणा यूक्लिडीय ज्यामिति में

अ तर्निहित है। एक रेखा दिक् के बिन्दुओं को अलग करने वाले अशो का नहीं बल्कि स्वय बिन्दुओं का एकीकरण है और एक समतल रेखाओ की एक सख्या का कुल योगफल है। फलस्वरूप दिक् बिन्दुओं से बना है वह अस्तित्व स उत्पन्न है। बिन्दु की वृत्ति अस्तित्व मे होना है इसलिए अस्तित्व दिक् का पूर्ववर्ती है।

यह विश्लेषण काल की अवधारणा पर भी पूरी तरह लागू होता है। अवधि भा अस्तित्व पर आधारित है। तर्क स्वत प्रमाण है। सम्भवन के लिए एक वस्तु का होना अनिवार्य है। घटनाओ के बीच में अन्तराल—अस्तित्व में परिवर्तन—के आन्मि अनुभव से काल के प्रत्यय न जन्म लिया है। सम्भवन किसी वस्तु के जीवन इतिहास का निर्माण करती हुई घटनाओं की एक लडी है। दिक् सत्ता है, और काल सम्भवन। शुद्ध सत्ता तर्कानुसारेण कल्पनीय है जब कि सम्भवन में सदैव सत्ता अनिवार्य है। इस प्रकार दिक् से मुक्त काल कभी अस्तित्व में नहीं आ सकता। प्रकृति न उसे दिक् से सयुक्त कर दिया है।

दिक् और काल के सामान्यबोधीय प्रत्यय का यह सरल विश्लेषण सीधे चतुरायामीय सातत्यक की ओर ले जाता है। सत्ता त्रिआयामाय है। लेकिन विश्व सम्भवन की प्रक्रिया है। शुद्ध सत्ता अर्थात् घटनाविहीन अस्तित्व एक अमूर्तन है। सम्भवन चतुरायामीय है क्यों कि वह अस्तित्व और परिवर्तन—दिक् और काल—को अपनी परिधि में लेता है। सम्भवन की प्रक्रिया एक चतुरायामीय सातत्यक है। सापेक्षता के सिद्धा त द्वारा प्रस्तुत विश्व-चित्र सामान्य बोध और प्राथमिक तर्कणा का मामला है। दिक् और काल की पुरानी धारणाएँ कृत्रिम और तर्कविरुद्ध थीं। नान के प्रयाण ने उ हें पीछे छोड दिया है।

इस तथ्य में कोई विरोधाभास नहीं है कि प्रकृति के बारे में हमारा वर्तमान ज्ञान विगत नान से भिन्न है। धुँधली दूरी से देखी गयी किसी भी वस्तु का मानसिक या भौतिक चित्र अधिक अनुकूल स्थिति से देखने पर दोषपूर्ण और कुछ मामलों में गलत सिद्ध होता है। किसी वस्तु के दोषपूर्ण और अधिक यथातथ्य चित्र के बीच विसगति इस तथ्य से अप्रमाणित नहीं होती कि दोनों प्रेक्षकों से स्वतन्त्र भी किसी चाज का अस्तित्व है। वह उन स्थितियों से पैदा होता है जिन में किसी वस्तु को देखा जाता है। ज्ञान का अन्तर ज्ञान की वस्तु की एकरूपता को प्रभावित नहीं करता।

कोलम्बस ने अमेरिका की खाज की और लौटने पर उस का वर्णन किया। लेकिन उस क अनुयायी अन्य खोजियों ने नयी दुनिया को अधिकाधिक भिन्न पाया। कोलम्बस तो जानता भी नहीं था कि उस ने एक नयी दुनिया खोज निकाली है। वह तो समयता था कि वह एक नये मार्ग स भारत पहुँचा है। क्रमश यह समय में आया कि एक नयी दुनिया खोज निकाला गया है और उम का वर्णन अधिकाधिक यात्रियों के वहाँ जाने और भिन्न भिन्न पहलुओं स उसे देखने के कारण पूर्ण से पूर्णतर होता गया। कोलम्बस और बाद के यात्रियों के विवरणों की भिन्नता ने इस तथ्य का प्रभावित नहीं किया कि

हर मामले में एक ही नयी दुनिया का वर्णन किया गया था। अमरिका अपने कारण अस्तित्व में था। उस का अस्तित्व उस की खोज करने वाले कोलम्बस के दिमाग पर आधारित नहीं था। विभिन्न वर्णन अमरिका के ही थे व यात्रियों के दिमागों की जालसाजी नहीं थे। उन्होंने भिन्न चित्र प्रस्तुत किये क्यों कि उन्होंने एक ही देश के विविध पहलुओं को देखा। कोलम्बस ने जो खोजा वह सम्पूर्ण अमरिका नहीं था। उस के वर्णन का सम्बन्ध उस महाद्वीप के निकट एक द्वीप की तटीय रेखा मात्र से था जिसे खोजा जाना था। नयी दुनिया का पूरा भौगोलिक वर्णन प्राप्त करने में लगभग दो सौ वर्ष लगे। आज भी अमरीकी महाद्वीप का भौगोलिक वर्णन निश्चय ही पूर्णता से दूर होगा। उस की समस्त खनिज सम्पदा का मीजान लगाया जाना अभी शेष है। कोलम्बस मसालों की खोज में गया था। कोर्टेज ने चांदी का समृद्ध स्रोत खोज निकाला। इस के बाद कोयले और पिट्रोलियम की बारी आयी। अब कनाडा के आर्कटिक क्षेत्र में रेडियम के विशाल भण्डार खोज लिये गये हैं। आज की नयी दुनिया कोलम्बस द्वारा खोजे गये अमेरिका से बहुत भिन्न है। तथापि यह वही भौगोलिक अस्तित्व है। लेकिन अन्वेषण के साथ उस के बारे में हमारा ज्ञान बढ़ता चला गया है।

यह समरूपता भौतिक विश्व के हमारे ज्ञान के बारे में भी मोटे तौर पर लागू होती है। शास्त्रीय भौतिकी और नयी भौतिकी के सिद्धान्तों में कोई विसंगति नहीं है वे हमारे अन्वेषण की प्रगति के साथ अपनी गोपनीयता को अधिकाधिक प्रकट करने वाली प्रकृति के बारे में हमारे ज्ञान के दो भिन्न चरणों का प्रतिनिधित्व करते हैं।

प्रकट विरोधाभास का उसी समय लोप हो जाता है जब हम अपने इस पूर्वग्रह से मुक्ति पा लेते हैं कि सही होने के लिए ज्ञान का पूर्ण—परम—होना आवश्यक है। सापेक्षता के सिद्धान्त का बुनियादी महत्त्व यह है कि वह शुद्ध तर्क द्वारा नहीं बल्कि अनुभव की सहायता से इस श्रद्धास्पद पूर्वग्रह से मुक्त होने में हमारी मदद करता है।

अध्याय छ

सार-तत्त्व और कारणता

यह सही नहीं है कि क्वाटम सिद्धान्त के माध्यम से नयी भौतिकी ने सार-तत्त्व की अवधारणा को निकाल बाहर किया है। वस्तुत दार्शनिक स्तर पर वह सापेक्षता के सिद्धान्त द्वारा प्रारम्भ किये गये काम को पूरा कर देती है। वह शेष दो सवर्गों—सार-तत्त्व और कारणता—से सम्बन्धित परमता की अवधारणा को भी मिटा देती है।

सापेक्षता का सिद्धान्त दिक् काल, द्रव्यमान, गति, बल ऊर्जा सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्डीय विन्यास को एक सवर्ग में घटा देता है। उस आधारभूत वास्तविकता की परम इकाइयों की द्रव्यमान बिन्दुओं के बजाय घटनाओं के रूप में कल्पना की जाती है ताकि उस के गतिशील चरित्र पर बल दिया जा सके। विश्व कोई स्थितिशील सत्ता नहीं है यह सम्भवन की एक प्रक्रिया है। इसलिए, घटनाओं अर्थात् उस के परम घटकों की अवस्था में परिवर्तन की शब्दावली में उस की व्याख्या होनी चाहिए। केवल

इसी तरह हम ब्रह्माण्डीय विन्यास का एक यथार्थपरक चित्र पा सकते हैं। घटनाएँ क्यों कि गतिशील भौतिक परिमाण की हैं उन के बीच का अन्तराल स्थानिक भी है और कालिक भी।

जब तक भौतिकी और दर्शन ने परम दिक् और काल में विश्वास रखा और उन्हें परम सवर्ग समझते हुए तर्कानुसारेण सत्ता और सम्भवन का पूर्ववर्ती माना, तब तक पदार्थ की वास्तविकता की कसौटी दिक् में उस की अवस्थिति था। पदार्थ को काल के प्रत्त क्षण में दिक् में अलग-अलग अवस्थित द्रव्यमान के सूक्ष्म कणों के रूप में माना गया। आणविक भौतिकी ने खोज निकाला कि पदार्थ में वे गुणधर्म नहीं हैं—सदैव परम अर्थ में। दिक् में स्वाभाविक अवस्थिति की अवधारणा को त्याग देना होगा। कुछ दार्शनिक वृत्ति के वैज्ञानिकों ने इस से यह अनुमान लगाया कि सार-तत्त्व की पुरानी अवधारणा को भी निकाल बाहर करना होगा पदार्थ का भौतिक अस्तित्व नहीं है क्यों कि उस की परम इकाइयाँ दिक् में फैली हुई नहीं हैं। यह निष्कर्ष अपरिहार्य है, यदि हम यही मानते रहें कि दिक् में विस्तार ही अस्तित्व है। सापेक्षता के सिद्धान्त के कारण दिक् की अवधारणा में हुआ क्रान्तिकारी परिवर्तन अस्तित्व की पुरानी परिभाषा को ख़ारिज करने के लिए बाध्य करता है। पदार्थ का दिक् में अस्तित्व नहीं है। इस के विपरीत दिक् पदार्थ की वृत्ति है।

उपाणविक शोध ने प्रकट कर दिया है कि पदार्थ शास्त्रीय भौतिकी के परिकल्पना-चित्र की तरह सघटित नहीं है। नयी भौतिकी का विश्व ऐसे सार-तत्त्व से बना है जिस में स्थूल पदार्थ (दिक्काल सातत्य में कण) और ऊर्जा का भेद लुप्त हो गया है। सापेक्षता का सिद्धान्त गणितीय सकेत करता है कि द्रव्यमान और ऊर्जा परस्पर परिवर्तनीय हैं। यह सम्भावना प्रेक्षित तथ्यों से निगमित है। इस प्रकार, द्वैतवाद के उन्मूलन का मार्ग खोज लिया गया। पाया गया कि पदार्थ का चरित्र वैद्युतिक है, दूसरी ओर यह भी आविष्कृत हो गया कि विद्युत भौतिक कणों से सघटित है।

विश्व के आधार तत्त्व के बारे में नये ज्ञान का निहितार्थ पदार्थ की वास्तविकता का निषेध नहीं है। प्रस्तुत की गयी समस्या परम सार तत्त्व की सरचना से सम्बन्धित है। द्रव्यमान से तादात्म्य की हद तक ही सार तत्त्व की धारणा पर क्रान्ति ने प्रभाव डाला। द्रव्यमान पदार्थ का गुणधर्म है लेकिन अन्य गुणधर्मों की तरह वह भी परिवर्तनशील है।

सापेक्षता के सिद्धान्त में द्रव्यमान की परमता का लोप हो जाता है। ऊर्जा पदार्थ का एक रूप है और पदार्थ स्पन्दनशील सार-तत्त्व है। आणविक भौतिकी ने पदार्थ को ऊर्जा में बदल दिया है। उस का तात्पर्य पदार्थ का निषेध नहीं है। कोई क्वाटम भौतिकविज्ञानी अणु या उस के घटकों—इलक्ट्रानों या प्रोटानों—के अस्तित्व से इनकार नहीं कर सकता। रहस्योद्घाटन तो यह भी है कि इलेक्ट्रॉन और प्रोटॉन भी पदार्थ की परम इकाइयाँ नहीं हैं। लेकिन वे मापनीय अस्तित्व हैं और कोई गम्भीर वैज्ञानिक यह नहीं मानता कि मापनीय अस्तित्व किसी अनस्तित्व में से प्रकट हो सकते हैं।

केवल एक पीढ़ी पहले, अणु की भौतिक वास्तविकता पर विवाद था। शताब्दी के माड़ पर भौतिकी में सकट था। अब वह एक पुरानी कहानी है। अणु मैक के आक्रमण से बच कर निकल आया। आज, इलेक्ट्रॉन सन्देह का विषय बन गया है। लेकिन अणु प्रोटोनों और इलेक्ट्रॉनों से सघटित है। यदि ये घटक भौतिक अस्तित्व नहीं हैं ता अणु की भौतिक वास्तविकता को ले कर भी सन्देह सर उठायेगा और आणविक भौतिकी की भव्य प्रणाली हास्यास्पद दिखने लगेगा—खोदा पहाड निकली चुहिया। सार-तत्त्व की पराभौतिक अवधारणा भौतिकी का आधार बनी रहती है। कवल यही कि अब वह परिकल्पनात्मक सवर्ग की पूर्वमान्य अवधारणा नहीं है। विश्व की वस्तु की प्रकृति के बारे में आधुनिक सिद्धान्त अनुभवसिद्ध ज्ञान पर आधारित है। वह कार्य-कारणन्यायेन स्थापित है। पदार्थ की नया अवधारणा पुरानी अवधारणा का परिष्कार मात्र है।

कैम्ब्रिज के प्रोफेसर अण्डरेड द्वारा स्थिति का चित्रण इस प्रकार किया गया है

अणु की प्राचीन अवधारणा उस समय विचारित घटना-चक्र की व्याख्या के लिए उपयुक्त थी और हम आज भी कुछ सरल समस्याओं के लिए उस का इस्तेमाल कर सकते हैं लेकिन रेडियाधर्मिता और स्पेक्ट्रमविज्ञान के तथ्यो की व्याख्या के लिए हमें सिद्धा त की नयी विशेषताओं को अपनाना होगा। नया सिद्धान्त पुराने से बेहतर भी है क्यों कि वह केवल दो परम घटकों की अपेक्षा करता है जिन से अणु का निर्माण होता है। चाजों की व्याख्या के लिए जितने कम अस्तित्वों को बुनियादी मानने की जरूरत होती है, सिद्धान्त उतना ही बेहतर होता है। हम उस के लिए किसी अन्तिमता का दावा नहीं करते कुछ नये आविष्कार अचानक किन्हीं अशा क बारे में हमारे विचार को सशोधित करने के लिए विवश कर सकते हैं लेकिन वर्तमान सिद्धा त की सफलता बताती है कि सम्भवत हमें उस की बहुत-सी विशेषताओं को मानते रहना होगा। वह एक उत्कृष्ट व्यवहार्य परिकल्पना है क्यों कि वह वहा भा नियम को दिखाती है जहाँ अब तक कोई नियम नहीं खोजा जा सका था और उन विभिन्न घटनाओं के बीच सम्ब ध दर्शाती है जिन में हम पहले कोई सम्ब ध नहीं समझते थे। उस सिद्धा त ने हमें ज्ञात तथ्यों को अधिक सुविधाजनक और तर्कसगत रूप में व्यवस्थित करने के योग्य बनाया और बहुत रोचक नये तथ्यों के आविष्कार की ओर ले गया। वह अपने गुण के कारण उपयुक्त है, लेकिन अ तिम नहीं है। विज्ञान सजीव है, और सजीव विकसित होते हैं। (दि मैकेनिज्म ऑफ नेचर)

इस प्रकार क्वाटम भौतिकी के आविष्कारों द्वारा पदार्थ की अवधारणा म हुई क्रान्ति का तात्पर्य यह नहीं है कि सभी स्थापित सिद्धान्त उलट गये हैं और परिणामस्वरूप शास्त्रीय भौतिकी से जुड़ी यन्त्रवादी भौतिकवादी दार्शनिक अवधारणाओं का पतन हो गया है। वर्तमान प्रक्रिया प्रत्ययों के एक उच्चतर समन्वय की ओर उन्मुख है। पदार्थ

किसी रहस्यमय शक्ति द्वारा सचालित कोई निष्क्रिय द्रव्यमान नहीं है। पदार्थ और ऊर्जा हमारे अनुभव में इन रूपों में प्रवेश करने वाले सार-तत्त्व की द्विविध अभिव्यक्ति है। सत्ता अपने को सम्भवन में चरितार्थ करती है।

स्पष्ट है कि क्वाटम व्यापार से प्रकटत विक्षुब्ध भौतिकी ब्रह्माण्डीय सातत्य के प्रत्यय की ओर लौट रही है। शास्त्रीय भौतिकी द्वारा परिकल्पित सातत्य का न्यूटनीय गतिकी अथवा मैक्सवेल के वैद्युतिक-चुम्बकीय समीकरणों में चित्रित रूप म अस्तित्व नहीं है। क्वाटम व्यापार इस सिद्ध करता है। लेकिन तरगयान्त्रिकी—क्वाटम सिद्धान्त की अनोखी सन्तान—सातत्य को एक उच्चतर स्तर पर चित्रित करती है। तरगयान्त्रिकी उपाणविक जगत के हमारे ज्ञान के नयी भौतिकी की एक दूसरा शाखा सापेक्षता के सिद्धान्त की सगति में एक सैद्धान्तिक पद्धति में अंतिम व्यवस्थापन का निशा-निर्देश करती है।

निश्चय ही क्वाटम व्यापार की तर्कसम्मत व्याख्या अणुवैश्विक घटनाओं के अध्ययन में केवल सापेक्षता के भौतिक सिद्धान्त क विनियोग से पायी जा सकती है। तरगयान्त्रिकी उसी विनियोग का प्रतिनिधित्व करती है। वह उस बिन्दु की ओर अग्रसर है जहाँ नयी भौतिकी के विश्व क दो पक्ष मिलते और एक दूसरे में समाविष्ट हो जाते हैं। स्वय एडिगटन ने योग्यतम क्वाटम वैज्ञानिक दिराक के उच्चतर अमूर्त गणितीय शोध स पूरे आत्मविश्वास के साथ यह निष्कर्ष निकाला है।

पिछला शताब्दी के अन्त में यह पता चला कि अणु डाल्टन के जमाने से समझा जा रहा पदार्थ का लघुतम कण नहीं है। यह आविष्कृत हुआ कि अणु धन विद्युत द्वारा आवेशित एक नाभिक और उस के इर्द गिर्द एक या अधिक ऋणात्मक रूप से आवेशित कणों से सघटित है। ऋणात्मक रूप से आवेशित कणों को इलेक्ट्रॉन कहा गया। कैम्ब्रिज क प्रोफेसर थाम्पसन द्वारा अन्तरिम रूप से सुझाये गये इस सिद्धान्त को आगामी वर्षों में रेडियम क आविष्कार और रेडियाधर्मिता के अध्ययन से पुष्टि मिली। यह आणविक भौतिकी की शुरुआत थी।

अणु की आन्तरिक सरचना का अधिक यथातथ्य चित्र 1911 ई में रदरफोर्ड द्वारा विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया गया। बाद में प्रसिद्ध डेन भौतिकविज्ञानी नील्स बोर द्वारा सवर्धित रदरफोर्ड का सिद्धान्त इस प्रकार है एक अणु का आभ्यन्तर सौर परिवार के लघुतम रूप की तरह है। धन आवेशित नाभिक—प्रोटान—केन्द्र में स्थित है जिस के इर्द गिर्द इलेक्ट्रॉन उसी तरह घूमते हैं जैसे ग्रह सूर्य के इर्द गिर्द। व्यावहारत अणु का सम्पूर्ण द्रव्यमान प्रोटान में सकेन्द्रित है। उस का केवल एक छोटा सा भाग इलेक्ट्रॉनों में शेष होता है। फिर भी इलेक्ट्रॉन अन्तराल में प्रोटानों से हजार गुना बड़ा होता है और भयकर गति से चलता है कभी कभी प्रकाश के वेग के लगभग समान।

प्रारम्भ में लगभग अतीन्द्रिय द्रव्यमान और असाधारण गति ने जुड़ कर यही प्रभाव दिया कि इलेक्ट्रॉन पदार्थ का कण नहीं है। उस प्रभाव ने शताब्दी के मोड पर 'भौतिक सिद्धान्तों के सकट' को उत्पन्न किया। पदार्थ के अपदार्थीकरण की बहुत चर्चा रही। लेकिन वह प्रभाव पूरी तरह आधारहीन था क्यों कि स्वय थॉम्पसन ने इलेक्ट्रॉन के द्रव्यमान का आकलन कर लिया था।

आणविक भौतिकी के अविश्वसनाय लघु परिमाण केवल अमूर्त गणितीय गणनाओं के परिणाम नहीं हैं। उन की प्रयोगात्मक पुष्टि भी हो चुकी है। इलेक्ट्रॉन की जीवनी से निसृत बुनियादी महत्त्व का तथ्य यह है कि इस के बारे में अभौतिक कुछ नहीं है। हार्वे-गिब्सन लिखता है अपेक्षाकृत स्थूल प्रोटॉन धनविद्युत की लघुतम ज्ञात इकाई स तादात्म्य रखता है और इसी प्रकार हलका इलेक्ट्रॉन ऋण विद्युत की लघुतम इकाई के रूप में दिखाया गया है। तथापि, प्रत्येक इस अर्थ में पदार्थ का कण है कि उन का द्रव्यमान है और व गुरुत्वाकर्पण के अधान हैं और इसीलिए अपने अन्तिम विश्लेषण में, पदार्थ विद्युत से अभिन्न है।' (टू थाउजेण्ड इयर्स ऑफ साइन्स')

वैद्युतिक प्रवाह इलेक्ट्रॉनों की धारा है। यह तथ्य आणविक भौतिकी की महान सकारात्मक उपलब्धि का प्रतीक है। यह दर्शन के एक युगों पुराने बुनियादी प्रश्न का निर्णायक समाधान कर देता है। विद्युत क एकात्मक तत्त्व में घटित होकर भा विश्व की भौतिकता का रहस्यवादी अनस्तित्व में लोप नहीं हो जाता। कारण कि विद्युत एक वस्तु है और उस का अस्तित्व भौतिक है।

यदि हमें शुद्ध पदार्थ (शब्द के स्थूल अर्थ में) की परम इकाई की तलाश हो तो न्यूट्रॉन उपस्थित है। अन्तत , प्रकृति इतनी कजूस नहीं है जितनी एडिंगटन बताता है। वह अपने भेदों को अथाह रहस्य में छुपा कर नहीं रखती कि मनुष्य उन्हें कभी भा न जान सके। जो भी लोग गम्भीरतापूर्वक उन की तलाश करते हैं उन्हें वास्तविक ज्ञान से पुरस्कृत किया जाता है।

आणविक नाभिक का आभ्यन्तरिक मूल न्यूट्रॉनों से बना है, जब कि उस का बाह्य खोल सक्रिय प्रोटॉन बनाते हैं। फिर स्वतन्त्र इलेक्ट्रॉन हैं जो नाभिक के इर्द-गिर्द दिक् में गतिमान हैं। अभी तक ज्ञात बानबे रासायनिक तत्त्व परिमाण और मिश्रता में भिन्न अपने अणुओं के सयोग हैं। अणुवैश्विक सौर-परिवारों का यह विशाल समूह आणविक भौतिकी क लिए ऐसी समस्या पैदा करता है जो प्रतिभा के लिए एक चुनौती है। आणविक यान्त्रिकी के सामान्य सिद्धान्त स्थापित करने के लिए उन का वर्गीकरण पहला समस्या थी। नील्स बोर ने पहल की और 1913 ई तक एक विश्वसनीय लगने वाला समाधान प्रस्तुत कर दिया।

उस ने अणु की आ तरिक यान्त्रिकी को मोटे तौर पर इस प्रकार रखा अणु में प्रत्येक स्वत त्र इलेक्ट्रॉन गोलाकार अथवा अण्डाकार कई कक्षाओं में विकल्पत घूम सकता

है। लेकिन प्रत्येक इलेक्ट्रान के सामने में इन सम्भावित कक्षाओं की संख्या निश्चित है। जब किसी अणु की सामान्य स्थिति में तापमान की वृद्धि के कारण विक्षोभ होता है, तो स्वतन्त्र इलेक्ट्रान उच्च से उच्चतर कक्षा अर्थात् नाभिक से दूर से दूरतर कक्षाओं में छलांग लगाते हैं। इस से विपरीत शीतन की प्रक्रिया में इलेक्ट्रान क्रमशः निम्नतर कक्षाओं में आ जाते हैं। अपनी वैकल्पिक कक्षाओं में इलेक्ट्रानों की गति वैद्युतगतिकी के शास्त्रीय नियम के अनुसार होती है। लेकिन शास्त्रीय नियम एक कक्षा से दूसरी में छलांग—ऊर्ध्वगामी हो अथवा अधोगामी—की व्याख्या नहीं कर सकता। इस प्रकार, एक नयी समस्या पैदा हुई। भौतिक सिद्धान्तों की सम्पूर्ण व्यवस्था में एक दरार दिखाई दी। आणविक भौतिकी के नियम सम्पूर्ण भौतिक विश्व का संचालित करने वाले वैद्युतगतिकी के शास्त्रीय सिद्धान्त के साथ पूरी तरह समन्वय नहीं कर पा रहे हैं। इसी दरार में कथित नयी भौतिकी की जड़ है जिस ने अपने अनिश्चितता या अनिर्धार्यता के सिद्धान्त द्वारा वैज्ञानिक विश्व को उत्तेजित रखा।

अणु का आभ्यन्तर प्रत्यक्ष पर्यवेक्षण का विषय नहीं है। इस के बारे में हमारा ज्ञान अनुमानजन्य है। लेकिन अनुमान सूक्ष्म विश्लेषण के माध्यम से प्राप्त स्पष्ट और यथातथ्य जानकारी के आधार पर किये जाते हैं। बोर के अणु की परिकल्पनात्मक बनावट में इलेक्ट्रान एक कण है। तथापि उस के द्वारा कक्षाओं की एक पूरी शृंखला पर एकाधिकार के तथ्य में अन्तर्भूत एक सुराग ने उस की वास्तविक संरचना का संकेत दिया। वह एक कण है और इस के बावजूद किसी तरह एक पूरी कक्षा पर फैल जाता है। एक शुद्ध सच्चे कण को इतना ऐकान्तिक होने की कोई आवश्यकता नहीं है। यदि इलेक्ट्रान शुद्ध कण होता तो उस मार्ग पर एक से अधिक को घूमने से रोकने के लिए कुछ नहीं होता। परिष्कृत स्पेक्ट्रम विश्लेषण ने यह तथ्य उजागर किया कि उच्च कक्षाओं में इलेक्ट्रान का व्यवहार शास्त्रीय वैद्युतगतिकीय नियम के अनुसार गतिमान एक निश्चित द्रव्यमान वाले कण की तरह था लेकिन समय समय पर उन्मुक्त छलांग लगाते हुए यह निश्चितता नाभिक के पास निम्नतर कक्षाओं में अवरोहण के अनुपात में लुप्त होती जाती है। निश्चित स्थितियों की एक शृंखला के साथ कण से इलेक्ट्रान का कायान्तरण एक प्रकार की रेखा में हो जाता है जिस के संघटक बिन्दुओं को अलग नहीं किया जा सकता।

बोर की परिकल्पना के विश्लेषण से यह संकेत मिला कि निम्नतर कक्षाओं में इलेक्ट्रान कण की तरह व्यवहार नहीं करता। इस संकेत का अनुसरण करते हुए दे ब्रोगली और श्रोडिंगर ने तरंगयान्त्रिकी के सिद्धान्त को आगे बढ़ाया जिस के अनुसार निम्नतर कक्षाओं में इलेक्ट्रान दिक् में निश्चित स्थितियों वाला पदार्थ-कण नहीं है। पदार्थ के अन्तिम घटक की दिक् में कोई स्वाभाविक अवस्थिति नहीं है इसीलिए उस की गति की तेजी या कालवाची माप सम्भव नहीं। यह आविष्कार इस मन्तव्य की आधारभित्ति बना कि भौतिकी ने निर्धार्यता के सिद्धान्त से नाता तोड़ कर भौतिक विश्व की पराभौतिक उत्पत्ति को उजागर कर दिया है।

लेकिन यह आधारभित्ति पूरी तरह काल्पनिक है। द ब्रागली न दिखाया कि प्रकाश में कणों और तरंगों दोनों क गुणधम समकालिक हैं। यह न केवल गणिताय विश्लेषण द्वारा सैद्धान्तिक स्तर पर बल्कि प्रयोगात्मक प्रक्षण से भी स्थापित हुआ। प्रकाश के इस नये सिद्धान्त स यह सामान्य सिद्धान्त निकला कि जिन भौतिक गुणधर्मों का पूर्व में परस्पर एकान्तिक समझा जाता था, वास्तव में वे पूरे ब्रह्माण्ड में सम्बद्ध हैं। पदाथ की सरचना क संश्लिष्ट, एकात्मक विचार का सापेक्षता के सिद्धान्त द्वारा आग बढ़ाया गया जिस न पदाथ और ऊर्जा की एकात्मकता को स्थापित किया और सभी अवधारणाआ की परमता को समाप्त कर दिया।

प्रकाश के नये सश्लेषण सिद्धान्त का निरूपण कर क द ब्रोगली ने इस के सामान्य सिद्धान्त को अणु की सरचना के अध्ययन में इस्तेमाल किया। उस न सोचा कि परिष्कृत स्पेक्ट्रम विश्लेषण के सम्मुख बार की परिकल्पना की असफलता न्यूटन के प्रकाश के कणिका-सिद्धान्त की असफलता की सहधर्मी हो सकती है बार की मान्यता के विपरीत, इलेक्ट्रान शुद्ध कण नहीं भी हो सकते हैं।

इस नये अभिगम का अनुवर्तन करते हुए प्राफेसर श्रोडिंगर ने इलेक्ट्रान को पदार्थ के नन्हें कण नहीं बल्कि अणु के नाभिक के इर्द-गिर्द वितरित वैद्युतिक आवेश माना। उस ने अणुवैश्विक वैद्युतिक क्षेत्र का मानो स्पन्दनमय गति की अवस्था में चित्रित किया। इस परिकल्पना के आधार पर उस ने तरगयान्त्रिकी के सिद्धान्त का निरूपण किया। इस सम्बन्ध में कोई भी सम्भव सन्देह इस तथ्य ने मिटा दिया (जिस का प्रदर्शन श्रोडिंगर के अलावा प्रोफेसर बार्न न भा किया जो इस समस्या पर अलग से काम का रहा था) कि अणु की सरचना के बार में कई अलग से निरूपित सिद्धान्त समान रूप से उन्हीं परिणामों की ओर ले गये जिन का प्रेक्षण स्पेक्ट्रम विश्लेषण में किया गया था।

यह तथ्य निर्णायक दार्शनिक महत्त्व का है। कमोबेश शुद्ध अमूर्त तर्कना द्वारा अलग-अलग स्थापित सब सिद्धान्तों का मतैक्य उन के सामान्य सरोकार के विषय की वस्तुगत वास्तविकता के बारे में हर सम्भव सन्देह को निर्णायक रूप से मिटा देता है। ब्रह्माण्ड के अन्तिम घटकों के बारे में हमारा वर्तमान ज्ञान अनिश्चित हो सकता है, आणविक यान्त्रिकता अभी भी मात्र आंशिक स्तर पर हल समस्या हो सकती है, सम्भव है इलेक्ट्रान पदार्थ क रूढ़िबद्ध कण की तरह दिक् म अस्तित्वमान और काल में चलायमान न हो अणु का आभ्यन्तर अप्रेक्षणीय सवर्ग से सम्बन्धित हो सकता है तथापि, इस में कोई सन्देह नहीं हो सकता कि आणविक भौतिकी का सरोकार भौतिक वास्तविकताओं से है, जो भौतिकविज्ञानी के दिमाग से बाहर वस्तुगत रूप में अस्तित्वमान हैं। इस के सिद्धान्त भौतिक विश्व की काल्पनिक वास्तविकता से मानसिक विश्व की यथार्थ वास्तविकताओं तक ले जाने वाले पुल नहीं हैं। वे यह नहीं सिद्ध करते कि चीजों के मूल अप्रेक्षणीय अर्थात् अज्ञेय के अबोधगम्य क्षेत्रों में खोजे जाने हैं। नया भौतिकी भौतिक घटना-व्यापार का विश्लेषण उस अन्तिम घटक में नहीं

करती जा मानसिक वस्तु है। सभप में वह पराभौतिक चिन्तन के अगाध समुद्र में नहा बहता।

आणविक भौतिकी के सभी सिद्धान्तो का कुल परिणाम और सार-तत्त्व यह है कि अन्तत पदार्थ कणिका और तरग दानों क गुणधर्म रखता है। जैसे हम प्रकाश में दोनों गुणधर्मो को पा कर अब अचम्भित नहीं होते शीघ्र ही वैसा पदार्थ क साथ भा होगा। हम पदार्थ की सरचना में भौतिक विश्व के आधारतल में जितना गहर पैठेंगे हमारा ज्ञान उतना अधिक असन्दिग्ध होगा। अनुवर्ती सिद्धान्त एक दूसर का खारिज नहीं करते। हमारे विगत ज्ञान क दोषपूर्ण होने का तात्पर्य वर्तमान ज्ञान का अविश्वसनीय होना नहीं है न यह कि हम अज्ञय पर विचार कर रहे हैं। इस के विपरीत, यह सिद्ध करता है कि हमारे मनोजगत से स्वतन्त्र बाहर अस्तित्वमान विषयनिष्ठ वास्तविकताएँ चिन्तन के हमारे पारम्परिक साँचों में नहीं अँट पाती। विज्ञान का काम उन्हें ऐसे जानना है जैसे वे वास्तव में अस्तित्व में हैं। परम सवर्गों की पदावली में सोचने के आदी—धार्मिक और पराभौतिक सस्कृति की पृष्ठभूमि में रोपित आदत वाले—नय आविष्कार से सम्भ्रम में हैं और इस एक रहस्य बना देने पर तुले हैं। लेकिन अन्तत , रूढ़िवादी चिन्तन के ढग नये ज्ञान के प्रभाव में टूट जाते हैं। हमारा मन प्रकृति के बारे में हमारे ज्ञान के अनुरूप ढल जाता है। यह आविष्कार कि प्रकृति परम सवर्गों से परिचित नहीं है, अनिवार्यत हमारे मन को भी रूढ़िबद्ध अवधारणाओं से मुक्त करेगा, और उसे सापेक्षता की पदावली में विचार करना सिखायेगा।

क्वाटम सिद्धान्त हमें प्रकाश को ऐस घटना-व्यापार के रूप में देखना सिखाता है, जो कणिकामय भी है और स्पन्दनमय भी। सापेक्षता का सिद्धान्त दिक् और काल की अलग अलग अवधारणाओं को मिटा देता और हमें चीजों को एक चतुरायामीय सातत्यक में देखना सिखाता है। इन दोनों की सन्तान पदार्थ का तरग सिद्धान्त इसी तरह हमे विश्व के परम घटकों तक पहुँचाने के लिए हमारे मन को अविभाज्य कण की अवधारणा स मुक्त होना सिखाता है—एक ऐसा अवधारणा से मुक्ति जो डेमोक्रिटस के जमाने से भौतिकी को इतनी सफलताओं के साथ सचालित कर रही थी। जिस प्रकार जीवन के सिद्धान्त में परिवर्तन और पुन समायोजन जीवन को नष्ट नहीं करते उसी प्रकार पदार्थ की अवधारणा में समुपस्थित क्रान्ति पदार्थ को नष्ट नहीं करता भौतिकी को पराभौतिकी में नहीं मिला देता।

भौतिक विश्व को एक गतिशील एकात्मक तत्त्व में घटा कर आधुनिक भौतिक शोध ने अन्तत सार तत्त्व की पुरानी दार्शनिक समस्या को हल कर दिया है। अब सार को उस के गुणधर्म से अलग करना वास्तविकता को उस के आभासों से अलग करना अर्थहीन है। जब भौतिक अस्तित्व के विविध पहलुओं के लिए एक सामान्य आधारभित्ति की जरूरत था तो चीजों के एक सार को पूर्वमान्य करना आवश्यक था।

वैसा हो जाने पर परिवर्तनशील गुणधर्मों से अलग एक अपरिवर्तनीय सार की अवधारणा अनावश्यक हो जाती है।

आद्यरूप में पदार्थ कुछ ऐसा नहीं है जो दिक् में अस्तित्वमान हो और काल में परिवर्तनशील। पदार्थ का अस्तित्व बहुसंख्यक आकारों में उस के रूपान्तरण में ही सिद्ध होता है। दिक् और काल व्युत्पत्तिक सवर्ग हैं जो क्रमश भौतिक अस्तित्व की ज्यामितिक और कालक्रमिक वृत्तियों के प्रतिनिधि हैं। पदार्थ के अभाव में न दिक् सम्भव है, न ही काल। स्पष्टतया पदार्थ की वास्तविकता को उन सवर्गों पर आश्रित मानना हास्यास्पद है जिन की वास्तविकता स्वय पदार्थ की वास्तविकता पर आधारित है।

भौतिक विश्व का अस्तित्व है। उसे मनुष्य के मन द्वारा नहीं रचा जाना है। वह है जिसे जाँचना, व्याख्या करना, जानना और समझना है। यह विज्ञान की वृत्ति है। विज्ञान ने इस काम को पूरा किया है, और भौतिक अस्तित्व के मूल के अनस्तित्व में लुप्त होने का आविष्कार नहीं किया है। उस ने पदार्थ को मन में नहीं घटा दिया है। उस ने पदार्थ की स्वयपर्याप्तता को प्रमाणित किया है। पदार्थ एक वस्तुगत सवर्ग है। स्वयपर्याप्त वस्तुगम्यता परम वास्तविकता है। इसलिए पदार्थ ही एकमात्र वास्तविकता है। वह तत्त्वमीमासात्मक स्तर पर वास्तविक है। उस की ज्ञानमीमासात्मक वास्तविकता तर्कानुसारेण सिद्ध होती है।

सार-तत्त्व की ही तरह, कारणता भी नयी भौतिकी में बनी रहती है। आणविक भौतिकी सम्बन्धी शोधकार्यों में साख्यिकीय पद्धति का उपयोग कारणता को अप्रमाणित नहीं करता। हमारे ज्ञान की अनिश्चितता की अवस्थाएँ सम्भाव्यता की पदावली में अभिव्यक्त होती हैं। आलोचना हमारे ज्ञान की अनिश्चितता के ज्ञान के विषय में गुप्त स्थानान्तर की अनुमति नहीं देती। किसी चीज या घटना की सम्भाव्यता उस के बारे में हमारे ज्ञान की सानुपातिक है। ज्ञान जितना अधिक है सम्भाव्यता भी उतनी ही अधिक है। जब सम्भाव्यता के रूप में किये गये सभी भविष्यकथन सही साबित होते हैं तो यह केवल सम्भाव्यता की बात नहीं रह जाती। सम्भाव्यता की अवधारणा से जुड़े अनिश्चितता के तत्त्व के निपट अभाव में उस अवधारणा का भी लोप हो जाना चाहिए। लेकिन औपचारिक तर्कशास्त्रीय अर्थ में वह इस दलील पर टिकी रहती है कि परिकलन के यथातथ्य ज्ञान के बजाय सम्भाव्यता पर आधारित होने के कारण निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि अगला भविष्यकथन गलत नहीं होगा। शुद्ध अनुभववाद के इस अपव्यय के दृष्टिकोण से किसी भी वैज्ञानिक सिद्धान्त की अविवाद्य वैधता नहीं हो सकती। हमें सदैव आग पर रखे जाने वाले अगले बर्तन के पानी के जम जाने की आशा करनी चाहिए। इस दलील का निष्कर्ष यह है कि सम्पूर्ण प्राकृतिक व्यापार के बारे में सम्पूर्ण ज्ञान के बिना कोई सिद्धान्त सम्भव नहीं है। कि हम सब कुछ जाने बिना कुछ भी नहीं जान सकते। क्योंकि ज्ञान की मानवीय क्षमता के लिए तत्काल सब कुछ जान लेना सम्भव नहीं है, ज्ञान का कोई सिद्धान्त नहीं

प्रकटाकरण की मान्यता की ओर ले जाता है सत्य कभी जाना नहीं जा सकता वह प्रकट होता है।

सत्ता के नियम सुनिश्चित कारणता के नियम हैं, जब कि सम्भवन के नियम सम्भाव्यता के नियम हैं। सम्भवन सत्ता का पूर्वमान्य करता है इसलिए सांख्यिकीय नियम इस मान्यता पर आधारित हैं कि किसी प्रक्रिया में शामिल अस्तित्व व्यक्तिशः भी सुनिश्चित कारणता के नियमों से शासित हैं। इस मान्यता के बिना सम्भाव्यता के किसी भी नियम को बनाना असम्भव हो जायेगा। किसी सामूहिक व्यवस्था को अव्यवस्थित व्यक्तियों पर आधारित नहीं किया जा सकता। यदि कुछ व्यक्ति सांख्यिकीय नियमों का उल्लंघन करते पाये जाते हैं तो इस से कारणता के सुनिश्चित नियमों की असफलता नहीं सिद्ध होती, इस का तर्कसंगत निष्कर्ष यही होगा कि हमारा प्रेक्षण दोषपूर्ण रहा है—नियम को सही कसौटी पर नहीं परखा गया। दूसरी ओर सम्भवन से मुक्त सत्ता की अवधारणा एक शुद्ध अमूर्त अवधारणा है। एकाकी अथवा स्थिर सत्ता एक तर्कजन्य सवर्ग है। उस की कोई भौतिक वास्तविकता नहीं है। इसलिए एकाकी इलेक्ट्रॉन जैसे आत्यन्तिक मामलों में कारणता के सुनिश्चित नियम का प्रयोगात्मक प्रदर्शन नहीं हो सकता। तथापि तर्कानुसारेण वह अविवाद्य है।

अपनी विषय वस्तु के स्वभाव के ही कारण तरंगयान्त्रिकी सांख्यिकीय होने को बाध्य है। उस का सम्बन्ध एकाकी कणों से नहीं है। उस ने प्रकृति के परम घटकों को सामूहिक सम्भवन की अवस्था में घटा दिया है। परिणामस्वरूप, पदार्थ को शासित करने वाला नियम उस की संरचना के आधार की गहराइयों में सांख्यिकीय ही होगा। लेकिन जब आनुमानिक आधार पर आविष्कृत नियम प्रकृति के प्रेक्षित तथ्यों और प्रयोगात्मक जानकारी से पुष्ट होता है तो उस की यथार्थता पर सन्देह नहीं किया जा सकता। तब कोई भी अनिश्चितता केवल रूपवादी तर्कशास्त्र की बात हो जाती है। कठिनाई केवल तभी आती है जब एक अनिवार्यतः सांख्यिकीय नियम वैयक्तिक इलेक्ट्रॉनों को आदर्श एकाकी कण मानते हुए गणितीय प्रयोगों द्वारा जाँचा जाता है।

नियतत्ववाद और सम्भाव्यता परस्पर ऐकान्तिक अवधारणाएं नहीं हैं। इस के विपरीत, दोनों का समन्वय हमें प्रकृति में वास्तव में अस्तित्वमान सम्बन्धों का अधिक सही चित्र प्रस्तुत करने के योग्य बनाता है। सम्भाव्यता के नियम से समन्वित नियतत्ववाद अपना सोद्देश्यवादी अर्थ खो देता है। दूसरी ओर कारणता के सिद्धान्त का पूर्ण निषेध करने पर सांख्यिकीय नियमों की कोई वैधता नहीं रहती। संक्षेप में सम्भाव्यता नियतत्ववाद की गतिशील दृष्टि है। इस के अतिरिक्त आगमन वैज्ञानिक शोध की आधारशिला है लेकिन नियतत्ववाद के अनमनीय नियम के साथ आगमन की तर्कानुसारेण संगति नहीं बैठ सकती। प्रणाली विज्ञान की दृष्टि से सम्भाव्यता वरेण्य है। इस धारणा से वैज्ञानिक सिद्धान्तों को तर्कशास्त्रीय वैधता मिलती है जब कि कारण-सम्बन्ध अनुभवसिद्ध अविवाद्य बना रहता है। जब गणना में अस्तित्वों की संख्या अगणनीय की

सामा तक आ जाय, लगभग अनन्तता के आसपास तो भविष्यकथन के बार में कोई परम निश्चितता सम्भव नहीं रहती। किसो विशिष्ट घटना पर भी सार कारणात्मक प्रभावों को नहीं साजा जा सकता। ऐसी स्थिति में, नियतत्ववाद की व्याख्या सम्भाव्यता की पदावली में करना पडती है। फिर भा नियतत्ववाद बना रहता है। एक प्रदत्त स्थिति की सब अगणित सम्भावनाए भी निश्चित होती हैं। यदि कार्ई सर्वाधिक असम्भाव्य घटना घटे तो उस का भी निश्चित कारण-सम्ब ध होता है।

प्रकृति में चमत्कारों के लिए कोई स्थान नहीं है। नयी भौतिकी उन्हें अपने विश्व में प्रवेश नहीं देती। एक प्रमुख क्वाटम भौतिकविज्ञानी प्रोफसर बोर्न यह सुभाव तक दे देते हैं कि भौतिक विश्व की आधारभूमि को भी सम्भाव्यता का क्षेत्र मान लिया जाना चाहिए। लेकिन वह निर्णायक रूप से इस मत के हैं कि सम्भाव्यता का सिद्धान्त भौतिक विज्ञान के इस बुनियादी सिद्धान्त का किसी भी तरह नहीं प्रभावित करता कि जा कुछ घटित हाता है वह कारणप्रसूत होता है न कुछ से कुछ नहीं निकलता। वह कहता है कि प्रकृति की हमारी दृष्टि में चमत्कारों में विश्वास के प्रवेश की ओर बढ़ना पूर्णतया गलत होगा।

कारणता के सिद्धान्त—कि प्रकृति में निश्चित सम्ब ध हैं—के निषेध का तात्पर्य विज्ञान की आधारभित्ति में हो विस्फोट करना होगा क्यों कि, सारे वैज्ञानिक अन्वेषण का प्रस्थान बिन्दु यही विश्वास है कि विश्व एक नियम-सचालित प्रणाली है और इन नियमों को खोजा समझा और उन का मात्रात्मक कथन किया जा सकता है। जब तक भविष्यकथन हो सकते हैं और घटनाएं लगभग उसी प्रकार घटित होती हैं, तब तक भौतिक नियतत्ववाद का सिद्धान्त खरा रहेगा।

अध्याय सात

आदि और अन्त की समस्या

धर्म को किसी भी रूप में पुनर्जीवित करने के बजाय आधुनिक भौतिक शोध हमें न्यूटन के यन्त्रप्रसूत ईश्वर का त्याग करने में समर्थ बनाता है। दूसरी तरफ सर जेम्स जीन्स की गणितीय प्रतिभा द्वारा आविष्कृत अत्याधुनिक गणितीय ईश्वर के लिए भी वह कोई गुंजाइश बनाता नहीं लगता।

शास्त्रीय भौतिकी का एक बुनियादी सिद्धान्त—तापगतिकी का द्वितीय नियम—सृष्टि के सिद्धान्त को सिद्ध करता लगता है। उस के अनुसार यह विश्व अन्ततः मृत्यु के लिए नियत है। विश्व का भाग्य 'ताप मृत्यु' है। कालक्रम में सौर एवं तारकीय विकिरण का सम्पूर्ण भण्डार बाहर निकलेगा और अन्तरतारकीय दिक् के ठण्डे विस्तारों में समा जायेगा। इतने विस्तृत क्षेत्र पर समान रूप से वितरित ताप की कुल मात्रा अतीन्द्रिय होगा और परिणामस्वरूप सम्पूर्ण विश्व जड़ीभूत हो जायेगा। इतने निश्चित

तौर पर विनाश के लिए नियत विश्व के निर्माण का भी अतीत में कहीं कोई निश्चित समय होना चाहिये।

एन्ट्रोपी के सिद्धान्त के अनुसार, किसी भी भौतिक प्रणाली को तापगतिकीय समत्व अर्थात् एक निश्चित कालावधि में ऊर्जा के पूर्णतया समान वितरण की अवस्था में पहुँचना ही होता है। यदि हमारा यह भौतिक विश्व एक अनादि अतीत में अस्तित्व में है, तो इसे बहुत पहले ही जम कर मर जाना चाहिए था। कोई निश्चित कालावधि, चाहे वह कितनी भी लम्बी हो, अनन्तता का बहुत ही न्यून अंश होती है। क्यों कि अपरिहार्य नियति ने अभी तक हमारे भौतिक विश्व को नहीं आ घेरा है, अतः इस का अस्तित्व अनादिकाल से नहीं है। इसलिए, निश्चय ही इस का निर्माण एक निश्चित समय में हुआ होना चाहिए।

एक अतिप्राकृतिक स्रष्टा को माने बिना सृष्टि की यह धारणा करना सम्भव ही नहीं है। इसीलिए एडिंगटन लिखता है 'इसे अनतिदूर काल में स्रष्टा के हस्तक्षेप के वैज्ञानिक प्रमाण की तरह उद्धृत किया गया है। लेकिन वह उस का चरित्र-चित्रण भी कर देता है कुछ कुछ अशोधित यह सहज धर्मशास्त्रीय मान्यता वर्तमान तापगतिकी की सभी पाठ्य-पुस्तकों में प्राप्य है अर्थात् यह कि कुछ अरब वर्ष पूर्व ईश्वर ने भौतिक विश्व का काम बन्द कर उसे संयोग पर छोड़ दिया।' (दि नेचर ऑफ दि फिजिकल वर्ल्ड')

पिछली आधी शताब्दी के दौरान भौतिक विज्ञान के विकास ने ताप मृत्यु की आशंका को मिटा दिया है। तापगतिकी का द्वितीय नियम एक भौतिक नियम के रूप में आज भी वैध है लेकिन उच्चतम एन्ट्रोपी अब नमेसिस की तरह नहीं दिखायी देती। वास्तव में, पहले भी इस से सृष्टि का सिद्धान्त अनिवार्यतः नहीं निकलता था। भोले धर्मशास्त्र में फँसे बिना वैज्ञानिक स्तर पर अधिक से अधिक यही सिद्ध होता था कि एक भौतिक व्यवस्था के रूप में हमारे ज्ञात विश्व का अस्तित्व अनादि नहीं है—कि उस का एक प्रारम्भ था, और इसलिए तर्कानुसारेण, वह अनन्त काल तक नहीं रहेगा उस का अन्त निश्चित है। यह स्वीकृति हमें ऐसे यन्त्रप्रसूत ईश्वर में विश्वास करने को बाध्य नहीं करता जो समय समय पर भौतिक प्रक्रिया में हस्तक्षेप करता और विश्व को रोक देता है। हमें केवल यान्त्रिक ब्रह्माण्डीय विकास को आनुक्रमिक आवर्तन में देखने की जरूरत है। यह कल्पनीय है कि ब्रह्माण्डीय विकास के प्रत्येक आवर्तन की समाप्ति पर समान वितरित ताप किसी प्रकार यहाँ-वहाँ संचित हो जाता है और एक नये आवर्तन की शुरूआत होती है। निश्चय ही इस का निहितार्थ ताप के पथ का विपर्यय होगा। लेकिन तापगतिकी ऐसे विपर्यय का पूर्णतया बहिष्कार नहीं करती।

विपर्यय प्रक्रिया के विरुद्ध उच्चतम सम्भाव्यता तभी काम दे सकती है जब ताप का वितरण असमान हो। यह नियम विकास के प्रत्येक आवर्तन में ताप के पथ के प्रेक्षण से निगमित है। तापगतिकीय समत्व की आदर्श स्थिति में यह नियम उपयोगी नहीं है।

तब विपर्यय की अवधारणा का कोई अर्थ नहीं रहेगा। पूर्ण समत्व की अवस्था एक विशुद्ध अमूर्त अवधारणा है। कभी सम्भव हो भी तो भौतिक वास्तविकता में यह समत्व क्षणिक होगा। तब इसे इधर या उधर चुकना होगा। न्यूनतम अंश में भी समत्व के न रहने पर तापगतिकी का द्वितीय नियम तत्काल अपने को पुनः स्थापित करेगा और ब्रह्माण्डीय विकास यान्त्रिक रूप से पुनः शुरू हो जायेगा। ऐसी आवर्तन प्रक्रिया दोनों ओर से असीम होगी—न कोई आदि, न हो कोई अन्त, और एक यन्त्रप्रसूत ईश्वर पूरी तरह व्यर्थ होगा। ऐसी विशुद्ध यान्त्रिक प्रक्रिया में ईश्वर की सर्वशक्तिमान धारणा भी ठीक नहीं बैठती।

लाप्लास के जमाने से गणितीय सिद्धान्तों की एक पूरी शृंखला ने दिखाया है कि हमारी भौतिक प्रणाली का विकास किस प्रकार समान विनिरित पदार्थ की आद्य अवस्था से शुरू हुआ होगा। आधुनिक खगोलभौतिकी ने नीहारिका परिकल्पना को गणितानुसार एक सुस्पष्ट सिद्धान्त में बदल दिया। वह हमें बताती है कि कैसे गैसीय नीहारिकाओं से तारों और आकाशगंगाओं का निर्माण हुआ और यह कि ब्रह्माण्ड के दूरतम भागों में यह प्रक्रिया आज भी चालू है।

तापमृत्यु के कारक तापगतिकीय समत्व का परम भविष्य-कथन इन दो मान्यताओं पर आधारित होगा। पहली यह कि इस प्रक्रिया में सम्मिलित ऊर्जा की कुल मात्रा सीमित है और दूसरे, ऊर्जा का उपलब्ध भण्डार अपरिमित रूप से विभाज्य नहीं है। ये मान्यताएं हमारे परिप्रेक्ष्य को दोनों तरह सीमित करती हैं—विराटवैश्विक स्तर के साथ अणुवैश्विक स्तर पर भी। आधुनिक भौतिकी के गणितीय परिकलनों के लिए अन्वेषण के क्षेत्र को सीमित करना आवश्यक है। लेकिन ब्रह्माण्डीय विकास की समस्या के प्रति दार्शनिक अभिगम पर इस तरह मनमाने प्रतिबन्ध नहीं होने चाहिये।

उन्नीसवीं शती के भौतिक सिद्धान्तों के आधार पर तापगतिकीय समत्व के बारे में कोई सुनिश्चित भविष्यकथन नहीं किया जा सकता। वे सिद्धान्त अनन्तता की अवधारणा की अवहेलना नहीं करते और ऊर्जा की शास्त्रीय अवधारणा अपरिमित विभाज्यता को प्रतिबाधित नहीं करती। एन्ट्रोपी की नियतिवादी दृष्टि और उस पर आधारित 'वैज्ञानिक' धर्मशास्त्र ताप के गतिज सिद्धान्त के एक अनिवार्य परिणाम नहीं थे। वे शायद भौतिकविज्ञानी के आध्यात्मिक पूर्वग्रहों का प्रतिबिम्बन अधिक थे। वैज्ञानिक आधार नयी भौतिकी द्वारा जुटाया गया जान पड़ता है। आइन्स्टाइन के परिमित किन्तु अबाध दिक् (ब्रह्माण्ड) के सिद्धान्त से ऊर्जा की कुल मात्रा के सीमित होने की पहली मान्यता को प्रोत्साहन मिला और ऊर्जा के उपलब्ध भण्डार के अपरिमित रूप से विभाज्य नहीं होने की दूसरी मान्यता को क्वाण्टम सिद्धान्त ने समर्थन दिया।

लेकिन एन्ट्रोपी ऊर्जा को प्रभावित ही नहीं करती वह ऊर्जा के संगठन का भी शासन करती है। यह विभेदीकरण बुनियादी महत्त्व का है। माना कि वैश्विक ऊर्जा का भण्डार सीमित है लेकिन साथ ही यह भी उल्लेखनीय है कि ऊर्जा संरक्षण का नियम

उस की कमा के विरुद्ध एक चरम सुरक्षा है। तब समस्या ऊर्जा की व्यवस्था की हो जाती है। और उस के समाधान में मानवीय घटक भी कुछ न कुछ कर सकता है।

जड प्रकृति में ऊर्जा का क्षय तापगतिकीय समत्व की ओर उन्मुख एक पूर्णतया यान्त्रिक प्रक्रिया है लेकिन मानवीय बुद्धि उस मे एक चयन तत्त्व का प्रवेश करा देती है। तकनाकी इस्तेमाल में ऊर्जा-व्यय अत्यन्त नियन्त्रित नियमित और व्यवस्थित किया जा सकता है ताकि तापगतिकी के द्वितीय नियम के विशुद्ध यान्त्रिक प्रचालन पर निर्णायक नियन्त्रण रखा जा सके। ऊर्जा की एक प्रदत्त इकाई में अव्यवस्था का आसाना से दूसरी में स्थानान्तरण करने से पहली के एक सीमा से अधिक अपविस्तार का रोका जा सकता है। जब कोयले का एक ढेर खुल में जलाया जाता है तो निहित ऊर्जा ताप में बन्ल कर आसपास के वातावरण में बिखरती हुई अप्राप्य हो जाती है। लेकिन, जब कोयल को भट्ठी में जलाया जाता है तो उत्पादित ताप इजिन को चलाने में समर्थ होता है। यहाँ ऊर्जा की व्यवस्था में परिवर्तन नियन्त्रित है। निश्चय ही, इस नियन्त्रित तकनीकी प्रक्रिया में भी मुक्त ऊर्जा का कुछ अश आसपास के वातावरण में बिखरता ही है। आधुनिक अभियान्त्रिकी की समस्याओं में से एक यह है कि इस नुक्सान का कैसे कम किया जाय और समस्या अशत हल कर ली गयी है। रिसाव को पूरी तरह शायद कभी नहीं रोका जा सकता किन्तु इस आशा का पर्याप्त कारण है कि इम में क्रमश कमी आयेगी और उस सीमा तक अन्तिम तापगतिकीय समत्व की कालीछाया भी घटता जायेगी।

एन्ट्रोपी का नियम हमें सम्भवन की प्रक्रिया को समझने और एक भौतिक प्रक्रिया के रूप में उस का अनुवर्तन करने के योग्य बनाता है। वह काल की अवधारणा को भौतिक मात्रा प्रदान करता है। एन्ट्रोपी के नियम के बिना भौतिकी हमारे सम्मुख विश्व का गतिमय चित्र प्रस्तुत नहीं कर सकती। वह हमें केवल दिक् में विस्तीर्ण एक भौतिक प्रणाली दिखाती है लेकिन इस चित्र में काल का प्रवाह' अनुपस्थित रहता है। विश्व का यह अत्यन्त वैज्ञानिक चित्र हमारे अनुभव के विश्व से मेल नहीं खाता, जा निश्चल नहीं बल्कि गतिशील है।

काल की अवधारणा विश्व के गतिमय चित्र से अपृथक्करणीय है। बाह्य विश्व के गतिमय आभास का एक वास्तविक भौतिक प्रक्रिया से तादात्म्य नहीं होने पर वह अनिवार्यत चिन्तन का एक अ त प्रज्ञात्मक सवर्ग बन जाता है। अथवा एक स्वतन्त्र तटस्थ वास्तविकता को काल पर आरोपित किया जाता है, और जगत को उस भुतही पृष्ठभूमि पर चलता हुआ चित्रित किया जाता है। परम काल की इस अवधारणा न दिक् की एक समरूप पराभौतिक अवधारणा के साथ मिल कर दीर्घ अवधि तक दार्शनिक चिन्तन का दूषित किया। जहाँ तक काल का सम्बन्ध है सापेक्षता के सिद्धान्त से बहुत पहले एन्ट्रापी के नियम ने उस दुष्चक्र स निकलने के रास्ते का सकेन कर दिया था। भौतिक विश्व के गतिमय चरित्र की पहचान और अनुवर्ती चरणों द्वारा

प्रक्रिया को मापने के योग्य बना कर उस ने घटनाओं के बाद व अन्तराल की तुलना के लिए एक परिमाण के रूप में काल की वास्तविक प्रकृति को प्रकट किया। इस प्रकार, काल सारी परिभाषा को नकारने वाला अपने ही कारण अस्तित्वमान एक काल्पनिक परभौतिक सवर्ग की गोचर अवधारणा नहीं रहा। उसे भौतिक विश्व के गतिमय कार्यव्यापार को मापने के लिए एक पारम्परिक विधि समझा जाने लगा।

भौतिकी में सापेक्षता के सिद्धान्त के प्रभुत्व में आने से पहले, एन्ट्रापी के नियम में अन्तर्निहित होते हुए भी काल की अवधारणा में इस क्रान्ति को पूरी तरह नहीं अनुभव किया गया था। काल की अवधारणा को वास्तविकता केवल तभी मिलती है जब उसे घटनाओं की कारण-शृंखला से जोड़ा जाता है। दूसरे शब्दों में कारणता का कार्यव्यापार—कारण कार्य की एक अटूट शृंखला में घटनाओं का उत्तरोत्तर होना—काल के सवर्ग को हमारी समझ की परिधि में ला देता है।

तब सीमित वैज्ञानिक अर्थ में, अर्थात् उस के दार्शनिक निहितार्थ से अलग, एंट्रोपी की अवधारणा को पदार्थ के वैद्युतिक सिद्धान्त की रोशनी में संशोधित करना होगा। तापगतिकी का नियम वैद्युतगतिकी—मैक्सवेलीय नहीं, बल्कि समकालीन आणविक भौतिकी द्वारा सुपरिष्कृत वैद्युतगतिकी में—पूर्णतया वैध नहीं भी हो सकता है। इस तथ्य के बावजूद कि नयी भौतिकी ने ताप ऊर्जा और विद्युत के भेद को मिटा दिया है, एक प्रयोगात्मक तथ्य एन्ट्रोपी की अवधारणा में संशोधन के तरीके का संकेत करता है। वह यह कि विद्युत-प्रवाह ऋण छोर से धन छोर तक जाता है। दूसरे शब्दों में, विद्युत की दिशा ऋण से धन की ओर है। ताप ऊर्जा का रास्ता इस से बिल्कुल विपरीत दिशा में है——धन से ऋण की ओर। यह तथ्य इस निष्कर्ष का आधार प्रस्तावित करता है कि न केवल ताप ऊर्जा के मार्ग के न उलटे जा सकने का प्रतिकरण किया जा सकता है बल्कि ऊर्जा के वैद्युतिक रूप में कार्य करते समय उसे उलटा भी जा सकता है। और हम निश्चित तौर पर जानते हैं कि ताप ऊर्जा के साथ-साथ विकीर्ण ऊर्जा का चरित्र वैद्युतिक है। इस के अलावा पदार्थ और ऊर्जा की समकक्षता के परिणामस्वरूप पदार्थ और विद्युत का तादात्म्य निर्णायक तौर पर स्थापित हो चुका है। जब बुनियादी सार तत्त्व की संरचना के आधार में वैद्युतिक प्रवाह के रूप में सारी गति ऋण से धन की ओर पायी जाती है तो यह मानते रहना मुश्किल हो जाता है कि तापगतिकी का द्वितीय नियम अपने व्यवहार में अबाधित है। तापगतिकी के एक नियम के रूप में वह सदैव की तरह वैध रहता है लेकिन अणुवैश्विक जगत की वैद्युतिकगतिकी उस से अप्रभावित रहती है।

ऐसा लगता है कि भौतिक विश्व की संरचना के आधार में कहीं गहरे भयोत्पादक तापगतिकीय समत्व की ओर उन्मुख ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के बिखराव की प्रक्रिया पर कोई नियन्त्रण है। ताप ऊर्जा की वितरण-प्रक्रिया विपरीत दिशा में प्रवाहित विद्युत से

प्रतिकारित लगती है। इस प्रकार, यदि ब्रह्माण्डीय ऊर्जा का भण्डार सीमित हो तो भी परिवर्तन की इस प्रक्रिया का समापन कभी नहीं होगा, ऊर्जा कभी समभाव से बँट ही नहीं सकेगा। सतह पर विराव की प्रक्रिया पदार्थ की संरचना की गहराई में हो रही प्रति-प्रक्रिया में उलट जायेगी।

बीसवीं शती की भौतिकी को अभी भी अन्य तथ्य मिल रहे हैं जो हमें एंट्रॉपी के सिद्धान्त की घातकता पर सन्देह करने के लिए तैयार करते हैं। इन तथ्यों का सम्बन्ध ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के भण्डार से है। ऊर्जा के अकल्पित स्रोत काम में लिये जा रहे हैं।

रेडियम के आविष्कार से प्रेरित साहसी सपनों को अभी पूरा नहीं किया जा सका है। जहाँ तक ऊर्जा का सवाल है नव-आविष्कृत रेडियोधर्मी तत्त्व पारमनशि मावित नहीं हुए हैं। प्रेरक शक्ति की अगणित राशि जुटाने वाले धात्विक रेडियम के छोटे अंशों ने सभी तकनीकी प्रक्रियाओं में अभी क्रान्तिकारी परिवर्तन नहीं किया है।* इस आविष्कार के प्रत्याशित व्यावहारिक परिणाम आज एक दूरस्थ सम्भावना अथवा सन्देहास्पद भी लग सकते हैं। इस के बावजूद जहाँ तक ऊर्जा के सिद्धान्त का सम्बन्ध है उस का महत्त्व दूरगामी है। रेडियोधर्मिता के घटना व्यापार के अध्ययन से हासिल पदार्थ की संरचना में नयी अन्तर्दृष्टि इस तथ्य के प्रकटन का वादा करती है कि उन्नीसवीं शती की भौतिकी को ज्ञात ऊर्जा ब्रह्माण्डीय ऊर्जा की कुल मात्रा का एक छोटा-सा अंश भर है, और यह मात्रा अपरिमित हो सकती है—[illegible] पराभौतिक अर्थ में नहीं बल्कि सापेक्षता के सिद्धान्त द्वारा [illegible] अर्थ में।

रेडियोधर्मिता के आविष्कार की वास्तविक अर्थवत्ता [illegible] है। [illegible] रेडियोधर्मी सार-तत्त्वों में ही उपलब्ध ऊर्जा के भण्डार [illegible] सकता। रेडियोधर्मी सार-तत्त्वों के विघटन के [illegible] कि पदार्थ वास्तव में ऊर्जा में रूपान्तरित होता है। [illegible] 'चमत्कार' से कहीं कमतर नहीं है। इस नव-[illegible] विपुलता को पदार्थ और ऊर्जा की सम[illegible] की मदद से समझा जा सकता है। [illegible] मात्रा उस द्रव्यमान के प्रकाश के [illegible] कि विघटित होने पर पदार्थ का [illegible] ऊर्जा की मात्रा का उत्पादन [illegible]

इस से हम यह कल्पना कर सकते हैं कि सैद्धान्तिक तौर पर सम्भाव्य द्रव्यमान के ऊर्जा में कृत्रिम तत्त्वान्तरण से ऊर्जा का कितना अटूट भण्डार मिल सकता है।

ऊर्जा के भण्डार में क्रमश वृद्धि की यह सम्भावना तापगतिकीय समत्व की प्रवृत्ति का निश्चय ही निर्णायक प्रतिकार करेगी। पदार्थ की सरचना के बारे में हमारे ज्ञान का विस्तार ऊर्जा की ऐसी प्रकृति के स्रोत की ओर हमें ले गया है जो तापगतिकी के द्वितीय नियम के परिधि से परे लगता है। पदार्थ के शास्त्रीय आणविक सिद्धान्त के आधार पर किये गये सारे आकलन को अनिवार्यत दुबारा ढालना होगा। यदि भौतिकी पराभौतिक पद अनन्त का इस्तेमाल न करना चाहे तो भी ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के स्रोत को अक्षय मानना होगा।

इसके बावजूद क्वाटम सिद्धात ने ऊर्जा में आणविकता का प्रवेश करवा कर इस मान्यता के लिए भूमिका प्रस्तुत कर दी कि ऊर्जा की विभाज्यता अपरिमित नहीं है और आइनस्टाइन का परिमित किन्तु अबाध विश्व का सिद्धात अनन्तता के पारम्परिक सिद्धात को भौतिकी के बाड़े से बाहर रखता लगता है। हमें देखना चाहिए कि क्या नयी भौतिकी के ये सिद्धात एट्रोपी के साघातिक नियम की उस की उत्पत्ति की कमजोरी से उबरने मे वास्तविक मदद करते हैं।

पहले हम क्वाटम सिद्धात को यह देखने के लिए लेते हैं कि क्या वह वास्तव में ऊर्जा की विभाज्यता के अपरिमित नहीं होने को स्थापित करता है। वह एक निर्णायक बिन्दु है। केवल ऊर्जा की आणविकता कुछ सिद्ध नहीं कर सकती। अणु शब्द का अभिप्राय अब अविभाज्य कण नहीं है। सिद्ध यह किया जाना है कि ऊर्जा अविभक्त इकाइयों द्वारा सघटित है और यह कि इन इकाइयों की सख्या परिमित है। एडिंगटन ने तापमृत्यु के इस भूत को दुबारा खडा किया फिर भी वह स्वीकार करता है कि जब सख्या अपरिमित है तो परिवर्तन की प्रक्रिया का भी कोई अन्त नहीं है और समत्व को कभी नहीं पाया जा सकता।

क्वाटम ऊर्जा का एक अणु नहीं है। वह उस तरह एक ठोस अस्तित्व नहीं है जिस तरह पदार्थ के अणु को समझा जाता था। वह एक मिश्रित वस्तु है—ऊर्जा की एक मात्रा तथा काल की एक अवधि का उत्पाद। दोनों घटक अश परिवर्तनीय है। स्थिरता और अविभाज्यता का सिद्धान्त इस प्रेक्षित तथ्य पर आधारित है कि घटक तत्त्वों के परिवर्तनीय होने पर भी उत्पाद सदैव समान है। क्वाटम की स्थिरता इस तथ्य से निश्चयपूर्वक प्रमाणित होता है लेकिन उस की ऊर्जा-वस्तु की अविभाज्यता अनिवार्यत नहीं। क्वाटम बाह्य तौर पर अर्थात् अन्य वस्तुओं के साथ अपने सम्बधों में स्थिर है। आभ्यतर में वह स्थिर भी नहीं है। उस की सरचना परिवर्तनीय है।

परिवर्तनीय सरचना वाला कोई वस्तु अविभाज्य नहीं हो सकता। इस प्रकार ऊर्जा एक प्राथमिक अविभाज्य इकाई की सामान्य हर में नहीं घटायी जा सकती।

ऊर्जा की सरचना के बारे में नये सिद्धान्त का उपर्युक्त विश्लेषण इस निष्कर्ष का औचित्य सिद्ध करता है कि प्रकृति में उपलब्ध ऊर्जा की इकाइयों की सख्या निश्चय ही परिमित होनी चाहिए। प्रत्येक इकाई में न्यस्त मात्रा की परिवर्तनशीलता इस निष्कर्ष का समर्थन देगी। इस प्रकार क्वाटम सिद्धान्त के प्रकाश में ऊर्जा की सरचना तापगतिकीय ममत्व का निवारण करने वाली प्रकृति की लगती है।

लेकिन आइनस्टाइन का परिमित किन्तु अबाधित विश्व' का सिद्धान्त शेष है। एक परिमित विश्व में ऊर्जा का भण्डार चाहे कितना भी विशाल हो, परिमित ही होगा। लेकिन इस सिद्धान्त में विश्व की परिमितता अबाधता के प्रत्यय से विशेषित है। प्रकटत , यह एक अन्तर्विरोधपूर्ण अवधारणा है—एक विरोधाभास। यह सापेक्षता के सिद्धान्त का तर्कसम्मत परिणाम है लेकिन यह भौतिक प्रणाली का चित्रात्मक प्रतिनिधित्व होने की अपेक्षा गैर-यूक्लिडीय ज्यामितिक अमूर्तन अधिक है। यद्यपि, गणितानुसार यह सिद्धान्त व्यवहारत अविवाद्य है, इस का प्रयोगात्मक सत्यापन सापेक्षता के सिद्धान्त की सीमाओं में असम्भव है। नयी भौतिकी इस प्रकार हमें एक नव्यतर भौतिकी की सीमाओं पर ले आयी है।

इस साहसपूर्ण अवधारणा ने आइनस्टाइन को इस योग्य बनाया कि वह पदार्थ, ऊर्जा, विकिरण, विद्युत तथा भौतिक विश्व के सब समवर्गी सवर्गों को एक तर्कानुसारेण परिपूर्ण पद्धति के घेरे में ले ले। इस महान उपलब्धि के कारण भौतिकीय गणनाओं की वर्धमान यथातथ्यता की आनुमानिक विचलन के विरुद्ध गारटी हो गया, जो वैज्ञानिक अन्वेषण के क्षेत्र से अनन्तता की अमूर्त अवधारणा के बाहर निकाले जाने तक अपरिहार्य था। भौतिक विज्ञान का मुख्य प्रकार्य मापन है। इसलिए, अमाप्य के लिए उस का कोई उपयोग नहीं है। मनुष्य के आध्यात्मिक परिप्रेक्ष्य पर विवेकाधीन अकुश लगाये बिना दर्शन अनन्तता की अवधारणा से छुटकारा नहीं पा सकता। भौतिकी को भी इस उलझनपूर्ण प्रश्न से दो-चार होना होगा परे क्या है ? क्या उसे परिमितता की परिकल्पना पर हठधर्मिता दिखानी चाहिए ? इसलिए यह कहना गलत होगा कि आइनस्टाइन ने अनन्तता का लोप कर दिया है। उस ने किया यह कि अमाप्य के न मापे जा सकने की घोषणा कर दी और एक माप्य क्षेत्र निश्चित कर दिया ताकि वर्धमान यथातथ्यता के साथ भौतिक अन्वेषण जारी रखा जा सके। भौतिकी के लिए नियत यह काम पूरा हो जाने पर और आगे देखने का समय आयेगा, और इस प्रारम्भिक कार्य का सम्पादन मनुष्य को उस उद्देश्य के लिए आवश्यक साज-सामान मुहैया करेगा।

अमूर्त अर्थ में अनन्तता मानवीय अवधारण से परे है इसलिए वह केवल निस्सार अनुमान का विषय है। अनन्तता को हमारे ज्ञान के विषय की अन्तहीनता और मानवीय प्राणी की सज्ञानात्मक योग्यता की असीमित सम्भावनाओं की तरह माना जा सकता है। लेकिन ज्ञान प्राप्त करना होता है इस कारण वह किसी प्रत्यक्ष, और इसीलिए परिमित वस्तु को पूर्वमान्य करता है जिसे जानना है। इस दृष्टि से परिमित

किन्तु अबाध विश्व की अवधारणा वैज्ञानिक अर्थ अर्थात् भौतिक प्रणाली का यथातथ्य ज्ञान प्राप्त करने की तकनीकी के अर्थ में पूर्णतया वैध है। दर्शनशास्त्रीय दृष्टि से भी यह उचित है एक तो इसलिए कि दर्शन वैज्ञानिक ज्ञान के संश्लेषण के सिवा और कुछ नहीं है और दूसरे यह अवधारणा अनन्तता को समाप्त नहीं करती बल्कि एक व्यावहारिक प्रक्रिया के गत्यात्मक परिप्रेक्ष्य द्वारा एक निराधार आनुमानिक अमूर्त स्थिर अवधारणा का विकल्प बनना है। एक जगज्जाल कल्पना के रूप में अनन्तता को मिटा दिया जाता है ताकि वह एक ग्राह्य वास्तविकता के रूप में अवतरित हो सके।

यह बिल्कुल स्पष्ट है कि वर्तमान में हमारे प्रेक्षणधर्मी सर्वेक्षण की पहुँच में आने वाले ब्रह्माण्डीय विस्तार के एक न्यूनतम अंश के भी अधिकाधिक मापन के लिए परिमित किन्तु अबाध विश्व एक व्यवहार्य परिकल्पना है। पृथ्वी से निरीक्षित ब्रह्माण्डीय विस्तार का न्यूनतम अंश भी अनिवार्यतः गोलाकार है क्यों कि प्रेक्षण और मापन के उपकरण सभी दिशाओं में समान विस्तार की पहुँच में लेते हैं। यह मानने का कोई कारण नहीं कि हमारे प्रेक्षणधर्मी सर्वेक्षण का गोलाकार दिक् एक बहुत विशाल गोलाकार दिक् का एक छोटा गोला नहीं है। इस के विपरीत, यह निश्चित है कि हमारा सूर्य जिस से सम्बद्ध है वह तारा मण्डल सर्वेक्षित खगोलीय क्षेत्र के केन्द्र में स्थित नहीं है। इसलिए हम वास्तविक ब्रह्माण्ड को कुछ इस रूप में पाने की आशा कर सकते हैं जब हम गोलीय नमूने द्वारा चिह्नित दिक् का मापन, सर्वेक्षण और मानचित्रीकरण कर चुकते हैं तो एक नया दृश्य हमारे सम्मुख खुलता है और गोलीय नमूना सैद्धान्तिक तौर पर सर्वेक्षण के इस नये इलाके पर भी समान रूप से लागू होगा। इस की निरन्तरता अनन्त होगी। इस प्रकार आइनस्टाइन द्वारा अनन्तता का समापन अनन्त को मापने की एक पद्धति के आविष्कार में बदल जाता है। हाँ मापन के लक्ष्य के अनन्त होने के कारण उद्देश्य कभी पूरा नहीं हो सकेगा। लेकिन मापन अनन्त काल तक जारी रहेगा यद्यपि ठोस माप्य मात्राओं से सम्बद्ध होने के कारण प्रत्येक प्रच्छन्न अवस्था में वह बिल्कुल सही होगा। एक विषयगत वास्तविकता के रूप में अनन्तता रहेगी शुद्ध काल्पनिक महत्त्व की पराभौतिक अवधारणा के रूप में उस का अस्तित्व नहीं रहता है।

एक अबाध विश्व अनन्त है परिणामस्वरूप ऊर्जा का वैश्विक भण्डार अक्षय है। यदि उसे प्राथमिक इकाइयों में घटा दिया जाता है तो उन की संख्या अपरिमित होगी और उन में परिवर्तन की प्रक्रिया अन्तहीन, तापगतिकीय समत्व कभी सम्भव नहीं होगा।

इस के अतिरिक्त, तापभौतिकी के सिद्धान्त की अणुवैश्विक जगत में कोई वैधता नहीं है जहाँ विपर्यय अथवा अविपर्यय का कोई अर्थ ही नहीं है। इलेक्ट्रॉनों की स्पन्दनमय गति तापगतिकी के नियमों द्वारा शासित नहीं है। ऊर्जा प्रक्रियाओं का अविपर्यय केवल इस अर्थ में परम है कि वे ब्रह्माण्डीय विकास की कारण शृंखला का संकेत करती हैं। जहाँ तक यह सिद्धान्त वर्तमान भौतिक प्रणाली के अन्त की अवधारणा को व्यक्त

करता है, वहां तक यह सन्देहास्पद है और यह सन्देह समकालीन भौतिकी के आविष्कारों द्वारा भी समर्थित है। एन्ट्रोपी के सिद्धान्त में उलझा हुआ असली मसला विपर्यय अथवा अविपर्यय का तकनीकी वैज्ञानिक सवाल नहीं है वह अस्तित्व के आदि और अन्त से सम्बद्ध गम्भीर दार्शनिक समस्या है।

आज कोई भी गम्भीर व्यक्ति समस्या के भोले सैद्धान्तिक हल से सहमत नहीं होगा जिसे पहले तापगतिकी के द्वितीय नियम से निगमित किया जाता था। जब यह निश्चयपूर्वक ज्ञात है कि वर्तमान भौतिक प्रणाली को अस्तित्व में लाने वाली ब्रह्माण्डीय विकास की प्रक्रिया व्यवहारतः अनिश्चित काल से चली आ रही है, तो उस के आरम्भ के प्रत्यय की शुद्ध काल्पनिक प्रकृति स्पष्ट हो जाती है। जैविक काल, अर्थात् अवयव-संस्थान का इतिहास एक सहस्र मिलियन वर्षों से कम पीछे नहीं ले जाता। उस से पूर्व के भूवैज्ञानिक विकास का दौर और भी लम्बी अवधि का है। तब, हमारी सौर-प्रणाली के निर्माण का युग आता है जो पूर्ववर्ती युग से भी लम्बा है। अन्त में आता है आद्य पदार्थ की पृष्ठभूमि से खगोलीय पिण्डों, तारों और आकाशगंगाओं के विकास की प्रक्रिया। यह प्रक्रिया खगोलीय काल में गणना करने पर कई-कई करोड़ खरब वर्षों तक चली। और हम जानते हैं कि प्रक्रिया वहीं रुकी नहीं। इसलिए यह निरा पूर्वग्रह है जो अभी भी विश्व के आरम्भ से सरोकार रखे हुए है।

विज्ञान उस आनुमानिक अवधारणा की उपेक्षा करता है। वैज्ञानिक दर्शन, अर्थात् विश्व की प्रकृति के बारे में सही ज्ञान पर आधारित सिद्धान्त का अब उस से कोई वास्ता नहीं है। यथातथ्य ज्ञान के प्रतिदिन बढ़ते हुए विशाल भण्डार की रोशनी में आदि और अन्त की पुरातन धारणा सब अर्थ खो देती है। उस पुरानी अवधारणा के साथ सृष्टि का सिद्धान्त और उस से सम्बद्ध विश्व की अन्तिम नियति के बारे में सोद्देश्यवादी विचार भी समाप्त हो जाता है।

सृष्टि के आरम्भ की अवधारणा जहां अतीत की गणनातीतता में खो गई है, वहीं परिकल्पित अन्त भी माप्य दूरी में नहीं लगता। भौतिक प्रणाली [illegible] परिप्रेक्ष्य व्यवहारतः असीमित है। भावी तापमृत्यु भी तभी [illegible] अपना विकिरण दिक् में उड़ेल चुके होंगे। यदि हम [illegible] विश्व की आयु और भी लम्बी है।

वयस्क तारों के अलावा विश्व के पास नये तारों के [illegible] विशाल भण्डार है। प्रेक्ष्य विश्व में [illegible] अवस्थाओं में नये तारों की आकाशगंगाओं [illegible] अभी तक अत्यन्त विरल [illegible] एक और पहलू भी है। आज हम जानते हैं कि [illegible] अन्तरनक्षत्रीय और अन्तरमन्दाकिनीय [illegible] इसलिए विकिरण [illegible]

म छितरे हुए पदार्थ द्वारा सोख लिया जाता है। हम यह भी जानते हैं कि पदार्थ और ऊर्जा परस्पर परिवर्तनीय है। परिणामस्वरूप, यह कल्पना सर्वथा स्वीकार्य है कि कथित रिक्त शून्य के ठण्डे क्षेत्रों में उडेला गया ताप छितरे हुए पदार्थ के इलेक्ट्रॉनों और प्रोटॉनों के रूप में क्रिस्टलीकरण में योगदान करता है। ऐसी परिकल्पित प्रक्रिया का परिणाम होगा छितरे हुए पदार्थ का सघनीकरण, और अन्तत नयी भौतिक प्रणालियों नीहारिकाओं और तारों का निर्माण।

हमारे समय के भौतिक विज्ञान द्वारा प्रस्तुत चित्र में कोई सकेत नहीं है कि विश्व का कभी कोई आदि था या कि उस का कोई अन्त होना है। भौतिक विकास की प्रक्रिया प्रतिवर्ती नहीं है किन्तु वह पुनरावर्तक अवश्य है। सूर्य से विकिरण पुन सूर्य में नहीं लौटता बल्कि अभी तक विज्ञान द्वारा अन्वेष्य एक चक्करदार पथ पर चलते हुए विकिरण के एक नये स्रोत के रूप में उस का क्रिस्टलीकरण हो जाता है। ब्रह्माण्डीय व्यवस्था में कुछ पिण्ड सम्भवत ठण्डे पड कर मृत हो जा सकते है। तथापि, उन से निसृत ताप सदैव के लिए खो नहीं जाता। स्थूल पदार्थ और अन्तत तारों के निर्माण के माध्यम से वह पुन सचरण में आ जाता है। अन्ततोगत्वा जमे हुए पिण्डों म जीवन पुन स्पन्दित हो सकता है। और यह सब अनन्त प्रक्रिया के किसी भी बिन्दु पर किसी बाहरी शक्ति के हस्तक्षेप के बिना यान्त्रिक ढग से घटित होता रहता है। अपनी सभी स्पष्ट और कबूल की गयी कमियों के बावजूद आधुनिक विज्ञान के आविष्कारों ने एक स्वयपूर्ण स्वचालित भौतिक ब्रह्माण्ड का यह चित्र पूरा कर लिया है।

अध्याय आठ

जीवन का रहस्य

उन्नासवीं शता के मध्य तक जैविकी अधिकाशत जैवशक्तिवाद और उद्देश्यवाद के प्रभुत्व में था। जीवन की उत्पत्ति का रहस्य विज्ञान की पहुँच से परे माना जाता था। सामान्यतया यहा समझा जाता था कि उस रहस्य के पर्दे के पीछे ऐसी सृजनात्मक शक्ति का लोकोत्तर क्षेत्र है जो अपना हा इच्छा स चालित है और जिसे मानवीय बुद्धि से कभी नहीं जाना जा सकता। यह बताया गया कि शब्द जैव अथवा सजीव जड़ पदार्थ की अवधारणा का प्रतिपक्ष है वह आध्यात्मिक सत्ता का प्रतीक है। यह और माना गया कि सृजनात्मक शक्ति का उद्देश्य जन्तुजगत में भी व्याप्त है। प्रत्यक विशिष्ट जीव की रचना सृष्टि विधान की भव्य याजना में उस की नियत भूमिका के अनुरूप मानी गयी। जैव प्रकृति और विशेषत मनुष्य के विस्मयपूर्ण घटना व्यापार क बारे में ज्ञान जितना बढ़ता गया मानव पारोपो पूर्वजानुरूपतावाद उतना हा मजबूत होता गया। यह दलाल दी

गयी कि इतना आश्चर्यजनक मशीन की रचना और सचालन उतनी ही आश्चर्यजनक किन्तु विशालता में अधिक पूर्ण मशीन से ही सम्भव है।

कोशाणु के आविष्कार पर जन्तुओं और वनस्पति में जीवन के घटना-व्यापार के आधुनिक विज्ञान अर्थात् शरीरविज्ञान ने भी यन्त्रवादी दृष्टि का ही स्वीकार किया। लेकिन जैविकी के आकृतिवैज्ञानिक खण्ड—अवयव सस्थानों के रूपों की उत्पत्ति और विकास के विज्ञान ने उद्देश्यवाद को ही पकडे रखा। जब तक जैव रूपों की उत्पत्ति और विकास के निर्धारक यन्त्रवादी नियम का आविष्कार नहीं हुआ, तब तक दैवी उद्देश्य को पूरा करने वाली विशाल ब्रह्माण्डीय मशीन के इतनी सावधानी के साथ उत्पादित अगों के जटिल प्रपच के पीछे किसी स्रष्टा का रहस्यमय हाथ माना गया। एक चमत्कार ही जैव विश्व का कारण रहा। इस से कोई फर्क नहीं पडता कि यह चमत्कार किसी व्यक्ति ईश्वर ने किया अथवा रहस्यमय जैवशक्ति ने। आखिरकार डार्विनवाद ने उद्देश्यवाद को उस के अन्तिम दुर्ग—मानवत्वारोपी जैविकी—से निकाल बाहर किया।

पूर्व में लेमार्क सेंट हिलेरी गोएथे एव अन्य उत्कृष्ट प्रकृतिवैज्ञानिकों द्वारा रेखित डार्विनवाद के बुनियादी सिद्धान्तों ने जैविकी के विज्ञान में पूरी क्रान्ति ला दी। पहले जैविकी का काम विविध जैव रूपों का आविष्कार, प्रमाणीकरण और वर्गीकरण करना था। डार्विनवाद ने जैविक ससार में सक्रिय निरन्तर विकास की प्रक्रिया के कारण सम्बन्ध से हमें परिचित करवाया। इसीलिए हैकेल ने डार्विनवाद को परिभाषित करते हुए उसे 'जैव रूपों की यान्त्रिक व्याख्या अथवा प्रकृति के सच्चे कारण का विज्ञान' कहा। डार्विनवाद ने प्रकृति में मनुष्य की स्थिति को हमेशा के लिए और सुनिश्चित रूप से परिभाषित कर दिया। उस ने मानव प्रजाति के विकास के चमत्कारविहीन इतिहास की पृष्ठभूमि प्रस्तुत कर दी।

डार्विनवाद ने निम्नतम से उच्चतम जैव रूपों के विकास की यान्त्रिकी की व्याख्या कर दी। हक्सले और हैकेल के काम से जड़ प्रकृति से जैव पदार्थ की सहज उत्पत्ति की सम्भावना का सकेत मिला। लेकिन अभी जीवविज्ञानियों को चकरा देने और अध्यात्मवादियों को उन के अनुसार भौतिकवादी दर्शन के विरुद्ध एक अकाट्य दलील मुहैया करने के लिए एक अप्राप्त कड़ी बाकी था। अन्तत अप्राप्त कड़ी की उलझनपूर्ण समस्या को भी इस आविष्कार से सैद्धान्तिक समाधान मिल गया कि प्रकृति में कोई एकरूपता नहीं है कि आकस्मिक छलांग विकास की प्रक्रिया में अन्तर्विष्ट है। प्रारम्भ में यह आविष्कार कारणता के नियम की वैधता को चुनौती देता सा लगा। अनन्तर वह विकास की प्रक्रिया के अनियमित व्यवहार की व्याख्या हो गया। उत्परिवर्तन के सिद्धान्त ने विकास के सिद्धान्त में क्रान्ति ला दी। प्रकृति के जैव और अजैव दोनों रूपों में मात्रात्मक परिवर्तन अचानक गुणात्मक हो गये। यह तब होता है जब एक प्रक्रिया में सम्मिलित विभिन्न तत्त्व अपनी क्रिया में अन्तसम्बन्ध के

एक बिन्दु पर पहुँच जाता है। इस बिन्दु पर प्रायः जागृति व अभिलाषा का आकस्मिक
उद्योग का रूप ले लेता है जो प्रक्रिया की प्रगति में विकास पैदा कर देती है। एक
नयी घटना होती है जिसका उस की पृष्ठभूमि में कोई प्रायः तात्कालिक कारण
स्पष्ट नहीं दिखाया जाता; तथापि, कारण मात्रा है—मात्रात्मक से गुणात्मक
परिवर्तन की सतत प्रक्रिया में प्रच्छन्न। उदाहरणार्थ, पानी में एकाएक से उबाल। जल
की आणविक गति में आकस्मिक उद्योग द्वारा भाप जल में विकसित हो जाती है।
आकस्मिक परिवर्तन अलौकिक घटनाएँ नहीं हैं। ये कारणता से विच्छिन्न नहीं
वरन् प्रमाणों द्वारा उत्पन्न विकास प्रक्रिया में सम्मिलित हैं। विकास की एक विशिष्ट
प्रक्रिया एक क्रांति में परिपूर्ण होती है जो एक नयी प्रजाति की उत्पत्ति का कारण
होता है।

जीव मात्र में भी जैव पदार्थ के विकास का उच्चतम रूप है जो स्वयं जड़ पदार्थ में
अन्तर्निहित विशिष्ट भौतिक रासायनिक प्रक्रिया का परिणाम है, इस तथ्य की
विशिष्ट स्थापना ने उद्भववाद और कारणतावादी दर्शन का अंतिम रहस्य भी आधार
पैदा देता है। जीवन कोई रहस्यमय अलौकिक शक्ति नहीं है। वह जड़ प्रकृति के गठन
की एक विशिष्ट स्थिति में अनुदित होता है। बुद्धि एक शरीरक्रियात्मक गुण है,
मस्तिष्क विचार का उपकरण है, और विचार मस्तिष्क की वृत्ति है। संक्षेप में, जीव
व्यापार किसी रहस्यमय परालौकिक शक्ति की अभिव्यक्ति नहीं है। यह मनुष्य के
किसी आध्यात्मिक सार का प्रकाशन नहीं करता। यह जैव पदार्थ का विकास रूप
एक रहस्य का रहस्य है।

हार्डिंग ने आधा शताब्दी पहले यथार्थ में आधुनिक जैविकी के यन्त्रवादी सिद्धान्त की
स्थूल रूपरेखा प्रस्तुत कर दी थी। उन्होंने लिखा: 'जिस एक जीवित प्राणी से अभिन्न
कुछ नहीं है। जीवन के सभी रूपों का यान्त्रिक—भौतिक रासायनिक—कारणों से
व्याख्या की जा सकती है जो जैव पदार्थ की अवस्था में ही निहित हैं। जीवन के विकास की
प्रक्रिया की निम्नतम अवस्था के प्रतिनिधि जन्तु और वनस्पति के सरलतम रूप स्वाभाविक
मूल कारण से उत्पन्न हुए और अब भी हो रहे हैं। पुराने दार्शनिक जगत् की
भावनाओं की—आत्मा तथा विचार आदि के—की पीढ़ी में भी आत्मा माना था।
उन्होंने प्रथम ज्ञान के अज्ञात शब्दों से इस नाम चलाया, और उन विचार तथा
अलग आध्यात्मिक सत्ता। लेकिन जब हम प्रकृति को छोड़ कर आगे का नया
शक्ति के रूप आज को मौन देते हैं, तो भ्रम और प्रमाद में पड़ जाते हैं। विचार
मेरा ज्ञान है, और रहेगा, जो प्रकृति के नियमों के प्रकार प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से
उत्पन्न होता है।' ('सृष्टिविज्ञान सिद्धान्त')

तथापि हार्डिंग ने अवश्य स्वभावतः अथवा जैव पदार्थ की उत्पत्ति के सम्बन्ध की
व्याख्या उपस्थित की। 'भौतिकता और स्पर्श' में यह स्पष्टतया दिखाया गया है कि
उस नया आत्मा और नया जीवन की स्थिति से कुछ भाग मिला है।'

हैकेल ने डार्विन के सिद्धान्त को उस के तर्कसंगत निष्कर्ष तक पहुंचाया और जीवों की आकस्मिक उत्पत्ति की लेमार्कीय परिकल्पना की प्रेक्षणधर्मी जानकारी से पुष्टि की। उस ने लिखा यदि हम स्वतःस्फूर्त उत्पत्ति की परिकल्पना को स्वीकार नहीं करें तो विकास के इतिहास के इस बिन्दु पर हमें अतिप्राकृतिक सृष्टि के चमत्कार की ओर लौटना होगा। स्रष्टा ने प्रथम जीवधारियों या कुछ प्रथम जीवधारियों की सृष्टि की होगी जिन से अन्य उत्पन्न हो सकें और उन्हें यान्त्रिक ढंग से आगे विकसित होते रहने की शक्ति प्रदान कर दी होगी। स्रष्टा ने पदार्थ के विकास की नियमित प्रक्रिया में किसी एक बिन्दु पर हस्तक्षेप किया, जब कि अन्य मामलों में वह उस के हस्तक्षेप के बिना पूर्णतः चलता रहा यह विचार मेरी दृष्टि में एक आस्थावान मन के लिए भी उतना ही असन्तोषजनक है जितना एक वैज्ञानिक प्रतिभा के लिए। (दि रिडल ऑफ दि युनिवर्स)

विश्व के इतिहास का वैज्ञानिक ज्ञान दिखाता है कि इस पृथ्वी पर जीवधारी अनादि काल से अस्तित्व में नहीं हैं। इस ग्रह के साथ-साथ सौर-प्रणाली के अन्य सदस्यों की अवासयोग्य अवस्था के कारण वे हो भी नहीं सकते थे। पृथ्वी की सतह के जल से ढक जाने के बाद एक निश्चित अवस्था में ही जीवधारी अस्तित्व में आये। मनुष्य के उद्गम को पृथ्वी के इतिहास के उस सुदूर बिन्दु तक खोजा जा सकता है। जैव पदार्थ में जल की प्रधानता स्पष्टतः इसी तथ्य के कारण है कि जीवधारियों के जन्म के लिए जल पूर्वशर्त है।

हैकेल ने समुद्र की सतह पर उतराते कुछ सरलतम जैव रूपों को खोजा। उस ने उन्हें **मोनेरा** कहा और अंगहीन अवयव-संस्थान के रूप में उन का वर्णन किया। उस ने लिखा वे बहुत छोटी सजीव कणिकाएँ हैं जिन के लिए वास्तव में अवयव-संस्थान नाम उपयुक्त नहीं है और जो किन्हीं अवयवों से सघटित नहीं बल्कि पूर्णतः बेडौल, सरल एकरूप पदार्थ हैं। इस मोनेरा की पूरी देह कार्बन के एल्बूमिनी संघटक से बने श्लेष्मा के बेडौल गतिशील छोटे ढले से अधिक कुछ नहीं है। इस से सरलतर या अधिक अपूर्ण अवयव-संस्थान की हम सम्भवतः कल्पना भी नहीं कर सकते।' (जनरल मॉर्फोलॉजी)

हक्सले ने भी निम्नतम जीवधारी—अवयव संस्थान—के एक समान रूप को समुद्र की गहराई से खोज निकाला—सतह के बारह से तेरह हजार फुट नीचे। वे बड़ी संख्या में पाये जाते हैं कभी श्लेष्मा के गोल से बेढंगे ढले के रूप में, और कभी पत्थर के टुकड़े या अन्य किसी चीज पर लिपटी श्लेष्मा की जाली के रूप में। हक्सले ने अपनी खोज के इन प्राणियों को समुद्रतलज—बाथिबियस हैकेला—कहा।

इन सरलतम और निम्नतम जैव रूपों की खोज ने जीवन के रहस्य पर कुछ प्रकाश डाला। लेमार्क के जमाने में, और उस के बाद भी, स्वतःस्फूर्त उत्पत्ति की परिकल्पना की सम्भाव्यता पर सामान्यतः सन्देह किया जाता रहा क्यों कि तब तक ज्ञात निम्नतम जैव रूप अपेक्षाकृत जटिल प्रकृति के थे। उन के लिए प्रयुक्त शब्द

'अवयव सस्थान का अर्थ ही यह है कि वह अवयवों का सगठन है जो आपस में मिलकर जीवन के प्रपच को घटित करते हैं। मोनेरा और बाथिबियस हैकेली सघटित अवयव-सस्थान नहीं थे, वे पूर्णतया एक रासायनिक सयोग से बने है और तब भी स्वयमेव बढते अपना पोषण करते और प्रजनन करते हैं।' (हैकेल) कार्बन का एक सरल यौगिक मौलिक जीवन का अधिष्ठान है जो पदार्थ की आणविक गति की समग्रता से अधिक रहस्यमय नहीं है। मूलत सभी अवयव-सस्थान एक एल्बूमिनी सार प्रोटोप्लाज्म अर्थात् जीवद्रव्य—कार्बन के साथ ऑक्सीजन, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन के सयोजन—के सरल डलों से अधिक कुछ नहीं है।

जैव और अजैव पदार्थ में सारत कोई भेद नहीं है। सारे भौतिक पिण्ड कार्बन ऑक्सीजन हाइड्रोजन नाइट्रोजन सल्फर पोटेशियम सोडियम आदि रासायनिक तत्त्वों के सयोजन से निर्मित हैं। ये रसायन वनस्पतियों और जन्तु शरीरों में भी पाये जाते हैं। ऐसे कोई तत्त्व नहीं हैं जो अजैव सार-तत्त्व में अनुपस्थित हों। अन्तर केवल जैवशक्ति' अर्थात् जीवन का है। कहने का तात्पर्य है कि जब रासायनिक तत्त्वों की एक सख्या का एक विशिष्ट सयोजन जीवन नामक एक घटना का उत्पादन करता है तो वह जैविक प्रकृति के अधिकार क्षेत्र में प्रवेश कर रहा होता है। इस घटना की प्राथमिक अभिव्यक्ति पोषण और गुणन की प्रक्रिया है। हैकेल और हक्सले द्वारा आविष्कृत सरलतम और निम्नतम अवयव सस्थान के रूप जैव और जड पदार्थ के बीच की सीमारेखा को अकित करते जान पडते हैं। हैकेल ने लिखा अपने शरीरों के एल्बूमिनी सार-तत्त्व की पूर्ण एकरूपता के कारण अपने में विजातीय वर्णों के अत्यन्त अभाव के कारण मोनेरा अवयव-सस्थान के बजाय अजैव से अधिक सम्बन्धित हैं और स्पष्टतया जैव और अजैव विश्वों के बीच सक्रमण बनते हैं।'

प्रोटिस्टा—आद्य जीव—उन विभिन्न रूपों का दिया गया सामूहिक नाम है जिन में मूल जैव पदार्थ अस्तित्वमान है और मोनेरा जिन का निम्नतम रूप है। उन में गिरी नहीं होती अर्थात् वे अभी एल्बूमिनी कार्बन यौगिक के द्रव्यमान के अन्दर विभेदीकरण की प्रक्रिया विकसित नहीं कर पाये हैं। क्रम में अगला उच्च स्थान अमीबा का है जिस में गिरी होती है जो एक बिन्दु पर सार-तत्त्व के सकुचन और सघनन मात्र से निर्मित हो जाती है।

सभी प्रोटिस्टा के आत्मा होती है अर्थात् वे सभी पौधों और जन्तुओं की तरह सजीव हैं। प्रोटिस्टा में आत्मा की सक्रियता उन की अतिसवेदनशीलता अर्थात् उन की चेष्टा और परिवर्तनों में प्रकट होती है जो उन के सकुचनशील प्रोटोप्लाज्म के यान्त्रिक, वैद्युतिक एव रासायनिक अतिसवेदन के परिणामस्वरूप घटित होते हैं। अन्य सब अवयव सस्थानों की तरह प्रोटिस्टा में भी आत्मा की क्रियाशीलताएँ प्रोटोप्लाज्म—जीव द्रव्य—में आणविक गतियों में अन्वेष्य है।' (हैकेल)

एल्बूमिनी सार तत्त्व के भौतिक और रासायनिक गुणधर्मों की अनन्त विविधता और बहुसख्या कथित जैवशक्ति का कारण है जो जीव को जड से भिन्न करता है। उन्नीसवीं

शती के आरम्भ तक विनान इस तथ्य स अनभिन था। कोशिका क आविष्कार ने शरीरविज्ञान में क्रान्ति ला दी। उस ने दिखाया कि जैव पिण्डों के सब रूप और गतियां कोशिकाओ क रूपों और गतियों का समुच्चय है जो सब जैव पिण्डों को सघटित करतो है। अनन्तर यह पता चला कि कोशिकाएँ श्लेष्मा के छोटे टुकडे हैं जिन का नाभिक सारे प्राण व्यापार का केन्द्र है। मोनेरा क आविष्कार न अत्यन्त रोचक तथ्य का प्रकट किया कि जैवशक्ति के केन्द्र से वचित श्लेष्मा का डला भी एक अवयव सस्थान है, क्यों कि वह अपना पोषण और प्रजनन करता है। इस स स्पष्ट वैनानिक निष्कर्ष यह निकलता है कि कोशिका—प्राण-व्यापार के अधिष्ठान—का विकास श्लेष्मा अर्थात् कार्बन यौगिक क भौतिक और रासायनिक गुणधर्मों में अन्तर्निहित है।

कार्बन के विशिष्ट रासायनिक-भौतिक गुणधर्म विशेषत सम्मिलन की अर्धतरल अवस्था तथा उस के अत्यन्त सग्रथित एल्बूमिनी सयोजन की सरल विघटनशीलता उस विशिष्ट गति-व्यापार के यान्त्रिक कारण हैं जो अजैव स जैव-सस्थान को भिन्न करता है, जिसे, एक सकीर्ण अर्थ में जीवन कहा जाता है।' (हैकेल— दि हिस्ट्री ऑफ क्रिएशन')

जैव और अजैव पिण्डों के बीच किसी मूलभूत भेद (सरचना निर्माण प्रक्रिया और गति से सम्बन्धित) का अभाव जैवशक्ति की अतिप्राकृतिक सृष्टि में रहस्यवादी आस्था को नष्ट कर देता है। पदार्थ से जीवन की स्वत स्फूर्त उत्पत्ति की अवधारणा सरल हो जाती है। मोनेरा और **आर्किबियस हैकेली** अवयव रहित अवयव सस्थानों में जीवन की प्रारम्भिक वृत्तियां दिखाते हैं। वहां हम लगभग उस बिन्दु पर पहुँच जाते हैं जहां अजैव पदार्थ के एक निश्चित सयोजन से जीवन स्वत स्फूर्त अकुरित होता है। यही जानना शेष रहता है कि कार्बन का यह विशिष्ट यौगिक कैसे बना। इस अन्तिम कड़ी को स्थापित करने में विफलता भी शृखला को अनिवार्यत अपूर्ण नहीं छोड़ती। क्यों कि यह बिल्कुल सम्भव है कि पृथ्वी की सतह के वातावरणीय और जलवायु सम्बन्धी परिवर्तनों के कारण वास्तव में स्वत स्फूर्त उत्पत्ति नहीं होती। सुदूर आद्य युगों में कार्बन की बहुत प्रचुरता थी (कोयले के भण्डार इस तथ्य के मुखर प्रमाण हैं)। इस कारण यह मानने का औचित्य है कि उन अनुकूल परिस्थितियों में जैव पदार्थ स्वत स्फूर्त अस्तित्व में आया और तब से वानस्पतिक और जन्तु जीवन के सब रूपों के आधार के रूप में स्वय का गुणन और प्रजनन करता आ रहा है।

लेकिन इस तर्कानुसारेण अकाट्य मान्यता पर पूरी तरह निर्भर करना आवश्यक नहीं है। यद्यपि स्वत स्फूर्त उत्पत्ति की परिकल्पना की स्थापना के लिए किये गये प्रयोगों के परिणाम सन्तोषप्रद नहीं रहे हैं तो भी सारे रास्ते चुक नहीं गये हैं। इस के विपरीत, जैव रसायनविज्ञान और शरीरविज्ञान की शानदार उपलब्धियों ने जैव पिण्डों की सृष्टि से सम्बन्धित चमत्कार को पूरी तरह नष्ट कर दिया है। एक सदी पूर्व यह आग्रह था कि रसायन विज्ञान उन कथित जैव यौगिकों को कभी नहीं बना पायेगा जो एक

रहस्यवादी अतिप्राकृतिक जैवशक्ति की सृष्टि माने जाते थे। फिर भी, 1828 ई में एक मरणधर्मा गोएटिंजेन विश्वविद्यालय का प्रोफेसर वोएहलर एक चमत्कार कर चुका था। अभी कुछ ही पहले सश्लेषण रासायनिकी बडी सख्या म जैव कार्बन यौगिको का उत्पादन करने में सफल हो चुकी है। उन में से कुछ इतने जटिल हैं कि प्लाज्मा नामक एल्बूमिनो सार-तत्त्व के काफी नजदीक पहुँच गये हैं।

शर्करा और प्रोटीन सामग्री जैसे जैव सार-तत्त्व तब बनते है जब पराबैंगनी किरणें कार्बन-डाइऑक्साइड अमोनिया और जल पर क्रिया करता हैं। इसे प्रयोग से दर्शाया जा चुका है। यह प्रक्रिया ही पृथ्वी पर जीवन का आरम्भ रही होगी। किण्वन (ख़मीर उठना) ही जैव प्रक्रियाओं का आरम्भ है। सुदूर युग में जब जीवन की उत्पत्ति हुई, वातावरण म ऑक्सीजन नहीं थी। अब भी यह देखा जा सकता है कि ऑक्सीजन मिलने से पूर्व जीवन किण्वन पर जीवित रहता है। जीवन एक किण्वक (एंजाइम) सक्रियता है जो एक विशुद्ध रासायनिक प्रक्रिया है। विलस्टेटर का मत है कि जीवन जैवरासायनिक परिवर्तनों का कुलयोग है, और जीवनशक्ति भौतिकशक्ति का एक रूप मात्र है।

जीवन की उत्पत्ति में एक व्यवस्थित प्रयोगात्मक अन्वेषण तब शुरू हुआ जब सत्तरहवीं शती के मध्य में रेडी और लियूवेनहोएक के आविष्कार जीवात्जीवोत्पत्ति के सिद्धान्त की ओर ले गये। शताधिक वर्षों पश्चात् पास्तुर के शोध इसी निष्कर्ष की ओर ले गये कि जीवधारी अस्तित्व जीवन के अन्य रूपों से उत्पन्न हुए हैं। लेकिन जीवन की उत्पत्ति को अभी भी खोजा जाना था, तथा पहले के लेमार्क कुवियर एव कई दूसरों की तरह अधिकाश जीववैज्ञानिक यही विश्वास करते रहे कि सुदूर अतीत में जीवन मृत पदार्थ से उत्पन्न हुआ है। पास्तुर का मत था कि जीवन के अभाव में किण्वन असम्भव है। उस से पूर्व स्कवाम दिखा चुका था कि ख़मीर अणुजीवों का द्रव्यमान है। पास्तुर का मानना था कि उन जीवों के मर जाने (जीवाणुनाशन) पर कोई किण्वन सम्भव नहीं है। लाइबिग का विचार भिन्न था। तथापि, पास्तुर के शोध यह सिद्ध करते लगे कि ख़मीर उत्पादन के लिए एक जीवित अवयव-सस्थान आवश्यक है। लेकिन बुकनर ने कुचले हुए (मृत) ख़मीर में किण्वन उत्पन्न कर दिया। इस प्रयोग ने यह सिद्ध किया कि किण्वन एक मृत सार-तत्त्व द्वारा उत्पादित उत्प्रेरक प्रक्रिया है लेकिन जिसे कुछ समय के लिए केवल ख़मीर से प्राप्त किया जा सकता है।

आद्य वातावरण (भूपटल के ठण्डा हो जाने पर) में ऑक्सीजन नहीं थी या थी तो बहुत कम। ऑक्सीजन की वर्तमान आपूर्ति इस सैद्धान्तिक निगमन को उचित ठहराती है। वर्तमान में वह कोयले के सारे भण्डार और अन्य जैव अवशेष को जलाने के लिए पर्याप्त भर है। आद्य वातावरण में कार्बन-डाइऑक्साइड और अमोनिया के अस्तित्व के प्रमाण हैं। पराबैंगनी किरणें पृथ्वी की सतह पर नहीं पहुँच पातीं क्यों कि वे ऊपरी वातावरण में ओज़ोन तथा निचले वातावरण में स्वय ऑक्सीजन द्वारा रोक ली जाती हैं। जब ऑक्सीजन नहीं थी तब उन्होने पृथ्वी की सतह तक पहुँच कर जल कार्बन-

डाइऑक्साइड तथा अमोनिया पर क्रिया की। पृथ्वी की सतह को आवृत करने वाला जल उस समय गर्म था—रासायनिक क्रिया के लिए सहायक। रासायनिक परिवर्तनों के घालमेल में जटिल कार्बन यौगिक उत्पन्न हुए जिन में से कुछ कलिल प्रकृति के थे उत्प्रेरक या किण्वक की तरह काम करते हुए। अजैव पदार्थ के भौतिक रासायनिक संगठन की यह अवस्था भलीभांति जीवन का चरागाह हो सकता था। अपनी उत्पत्ति में जीवन अन्य जैव-संस्थान से नहीं बल्कि अजैव यौगिकों से निसृत रासायनिक ऊर्जा से प्रकट हुआ। इस आनुमानिक निष्कर्ष की अनुभवगम्य पुष्टि इस तथ्य से होती है कि कई प्रकार के जीवाणुओं को ऑक्सीजन की आवश्यकता नहीं होती, वे रासायनिक परिवर्तनों (किण्वन) से ऊर्जा ग्रहण करते हैं। अधिक सम्भव है कि वे जीवाणुभोजी शाखा से सम्बन्धित हों।

मौलिक जैव सार-तत्त्व से जीवन के आदिम रूप तब तक उत्पन्न नहीं हुए जब तक पृथ्वी की सतह पर जल क्वथनांक से बहुत नीचे नहीं चला गया। कोई ऑक्सीजन उपलब्ध नहीं था। जीवन के अग्रदूत ने किण्वन—एक रासायनिक प्रक्रिया—से ऊर्जा प्राप्त की। एंजाइम किण्वन माध्यम है। कोई नहीं मानता कि वे सजीव हैं। जीवन के मार्ग पर जीवाणुभोजी एंजाइम से एक पड़ाव आगे है। उस अवस्था में वाइरस भी प्रकट होते हैं। जीवाणुभोजी अपना गुणन करता है इसलिए वह एक जैव या अर्धजैव संस्थान है।

हम जीवन को सारतः कार्बन, हाइड्रोजन ऑक्सीजन और नाइट्रोजन से बने किसी निश्चित रासायनिक यौगिक से सम्बन्धित जानते हैं। यह वास्तविक सजीव जीवद्रव्य—प्रोटोप्लाज्म—इन यौगिकों से रासायनिक स्तर पर कैसे सम्बन्धित है यह अभी पूरी तरह व्याख्यायित नहीं है। प्रोटीन प्रोटोप्लाज्म का मुख्य घटक है। कलिल यौगिकों को अजैव और जैव पदार्थ के बीच की अवस्था माना जा सकता है। इस क्षेत्र में घटित जीवन की स्वतःस्फूर्त उत्पत्ति के बारे में अब कोलाइड (कलिल) की रसायन विज्ञान द्वारा खोज की जा रही है जो जैव और अजैव विश्व के बीच की खाई पर पुल का निर्माण कर रहा है।

अवयव-संस्थानों में ऐसे कोई रासायनिक सार-तत्त्व अथवा प्रक्रियाएँ नहीं हैं जिन की अनुकृति नहीं हो सके। वोएहलर द्वारा मूत्राम्ल के उत्पादन से शुरूआत के बाद संश्लिष्ट जैवरासायनिक यौगिकों की एक शृंखला का उत्पादन हो चुका है। सजीव कोशिकाओं से सम्बन्धित जैव रासायनिक यौगिकों के तीन वर्ग—कार्बोहाइड्रेट्स वसा और प्रोटीन कोशिका के सार में कलिल अथवा पायसों का काम करते हैं। यह स्पष्टतर होता जा रहा है कि रासायनिक परिवर्तन कलिल कणों की अत्यधिक फैली हुई सतहों पर घटित होते हैं। इन विशिष्ट सतही प्रतिक्रियाओं में सम्भवतः जीवन के कई रहस्यों की कुंजी रखी है।

अन्त में जीवाणु विज्ञान के अद्यतन विकास ने अजैव और जैव के बीच की सीमारेखा को व्यवहारतः मिटा दिया है। एक कोशिका के रासायनिक यौगिक में जीवन नहीं

हाता। इसलिए जैव और अजैव पदार्थ के बीच का सूत्र कोशिका और अणु क बाच ही कहीं होना चाहिए। ~ हार्ले की जीवाणुभाजियों की खोज इस परिकल्पना को निश्चयात्मक तौर पर स्थापित करती है। जीवन उपेक्षित आयामों के विश्व में प्रकट हाता है—कलिला क विश्व में, जो रासायनिकी द्वारा व्याख्यायित अणुओं के विश्व और कोशिका विज्ञान द्वारा प्रतिपादित घटना चक्र के बाच हस्तक्षेप करता है।

अन्तिम विश्लेषण में हमें विकास के निचल सोपान में एक अन्य अप्राप्त कड़ी की समस्या का सामना करना है। जावन का वास्तविक चक्र जीवात्जीवोत्पत्तिमूलक है। किसा काल में सिलसिला शुरु हुआ। हम पृथ्वी की आग्नेय उत्पत्ति से विकास की प्रक्रिया को जावन के प्रथम प्रकटन को देखने के लिए उलट नहीं सकते। लेकिन सिद्धान्तत प्रक्रिया का पुनर्निर्माण हा सकता है, और उस से तर्कानुसारेण प्राप्त निगमन सैद्धान्तिक तौर पर वैध होंगे। पृथ्वी के विकास का सिंहावलोकन करने पर हम उस बिन्दु का सकेत कर सकते हैं जहाँ भौतिक-रासायनिक नियमों के क्रियान्वयन के फलस्वरूप जीवन का स्वत स्फूर्त प्रकटन सम्भव हुआ होगा। इस परिकल्पना को स्थापित करने के लिए जीवन का कृत्रिम निर्माण अनिवार्य साक्ष्य नहीं है। यह ज्ञान ही निर्णायक तत्त्व है कि ऐसा था।

जावन कुछ निश्चित भौतिक स्थितियों में प्रकट होता है जो पृथ्वी के सिवा और कहीं अनुपस्थित हैं। इस से उस परिकल्पना को समर्थन मिलता है कि जीवन एक रासायनिक प्रक्रिया है जा एक निश्चित भौतिक स्थिति में घटित होती है। विकास की प्रारम्भिक अवस्था में कभी जीवन का आत्यन्तिक आद्य रूप प्रकट हुआ। उस ने विकास का अपना क्रम शुरू कर दिया। तब जीवन का चक्र आरम्भ हुआ—प्रोटिस्टा—वनस्पति—जन्तु—जैव यौगिक में विघटन—जैव विश्व में उन का समावेशन। जैव और अजैव विश्व क बाच सम्बन्ध के मूल बिन्दु का प्रारम्भ हो गया। इसलिए स्वत स्फूर्त उत्पत्ति को पीछे जा कर नहीं खोजा जा सकता। वह अतीत की एक घटना थी। अब उसे केवल तर्कानुसारेण ही स्थापित किया जा सकता है। यह तथ्य कि भौतिक विश्व के प्रसग में ही जावन चक्र प्रकट हाता है कि अजैव पदार्थ निरन्तर जैव-सस्थान की रचना में सलग्न है कि चक्र का प्रत्येक बिन्दु भौतिक प्रसग से सम्बद्ध है, दिखाता है कि जीवन पदार्थ पर आश्रित है। इस मान्यता को तब तक गम्भीरतापूर्वक नहीं लिया जा सकता कि जीवन एक स्वतन्त्र सवर्ग है जो पदार्थ को अपनी अभिव्यक्ति के माध्यम की तरह उपयोग मे लाता है जब तक यह दिखाने की सम्भावना नहीं होती कि जीवन केवल अपने से अस्तित्व में रह सकता है। ऐसा न तो धर्मशास्त्रीय जैवशक्तिवाद से सम्भव हुआ है और न ही वैज्ञानिक नव जैवशक्तिवाद से। इसलिए जीवन की उत्पत्ति को अब पराभौतिक रहस्य के आवरण में ढक कर नहीं रखा जा सकता। पदार्थ के विकास की प्रक्रिया में नवीनताओं का प्रकटन समाविष्ट है। भौतिक विश्व के प्रसग में जीवन की उत्पत्ति एक नवीनता के रूप में हुई।

अध्याय नौ

नव-जैवशक्तिवाद

जीवन की उत्पत्ति को लेकर पारम्परिक आस्था को ठेस पहुँचाने से बचने की डार्विन की चिन्ता क बावजूद उन्नासवीं शता क अन्तिम दशकों में रूढ़िवादा दर्शन का काम नास्तिक अधार्मिक और अनैतिक मान्यताओं से युद्ध करना ही गया। इस धर्मयुद्ध में पुरोहित और प्रोफेसर कन्धे से कन्धा मिला कर लड़े। उत्तर हेगेल काल में पुराने शास्त्रीय दर्शन के सब प्रतिनिधि ध्वजाधारी क्रान्तिकारी मान्यता से या तो उत्साहपूर्वक लडे या उन्होंने उस की तिरस्कारपूर्ण हँसी उडाई। उदाहरणार्थ शोपेन-हावर ने अहकारपूर्वक उसे सस्ता अनुभववाद कह कर खारिज कर दिया। हार्टमान ने लापर्वाही से घोषित किया कि डार्विनवाद अपने ही तर्कसगत परिणामों से खा लिया जायेगा। महान नीत्शे ने अत्यन्त दम्भपूर्वक डार्विन को एक मीडियाकर बौद्धिक माना। अन्तत , डार्विनवाद की उच्छृंखलता के सयमन के लिए लेमार्क क प्रमाण का पुनराह्वान किया गया।

लेमार्क का जन्तुवैज्ञानिक दर्शन सारत भौतिकवादी था। इसलिए डार्विनवाद के विरुद्ध लेमार्क के प्रमाण के आह्वान का कोई अर्थ नहीं था। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में लेमार्क द्वारा एक निरर्थक ईश्वर के उल्लेख से कोई दार्शनिक पूंजी बनाना सम्भव नहीं रह गया था। डार्विन के विरुद्ध सघर्ष छेड़ने से पहले नव-लेमार्कवादियों को अपने गुरु ही से लडना पड़ा। लेमार्क की मान्यता थी कि जीवन का विकास आत्म परिरक्षण के परिणामस्वरूप भौतिक और रासायनिक कारणों से यान्त्रिक ढग से हुआ है। उस के अनुसार आवश्यकता सब अनुकूलन का कारण है। नव लेमार्कवादियों ने आवश्यकता के पर्दे के पीछे छिपी 'आत्मा' या जैवशक्ति का सुराग पा लिया और अपने सिद्धान्त की स्थापना के लिए उन्होंने लेमार्क पर ही अस्पष्ट परिभाषा देने और स्वय की भ्रान्तिपूर्ण अभिव्यक्ति का आरोप लगाया। उन की दलील थी कि प्रकृति के साथ जैव-सस्थानों के सक्रिय अनुकूलन के लेमार्क के सिद्धान्त में एक अभौतिक जैवशक्ति के अस्तित्व और क्रियाशीलता की स्वीकारोक्ति अन्तर्निहित है। इस विशेष बिन्दु पर लेमार्क कुछ कुछ अस्पष्ट हो सकता था। यन्त्रवादी सिद्धान्त के विपरीत सक्रिय अनुकूलन पद की गलत व्याख्या सम्भव थी। इस से यह प्रभाव पड सकता था कि लेमार्क ने अनुकूलन की प्रक्रिया में अन्तर्विष्ट इच्छा की कल्पना की थी। लेकिन समग्रत, उस का कार्य उस के सिद्धान्त की ऐसी बनावट के लिए कोई गुंजाइश नहीं छोडता। वह निश्चित था कि 'इच्छा कभी स्वतन्त्र नहीं है'। उस ने अनुकूलन की यान्त्रिकी के उत्तोलक को आवश्यकता में पाया। लेकिन नव-लेमार्कवादियों ने उस के स्पष्ट नियतत्ववादी विचार में उद्देश्यवादी अर्थ पढ डाला।

वैज्ञानिक के साथ-साथ दार्शनिक दृष्टि से भी आवश्यकता की अवधारणा कारणता के नियम से तादात्म्य रखती है। नव-लेमार्कवादियों ने एक दार्शनिक पद के सामान्यत स्वीकृत अर्थ की अवहेलना की और शब्द आवश्यकता पर विषयिनिष्ठ व्याख्या थोप दी अनुकूलन अनुकूलनशील विषयी—अभौतिक चेतना अह और आत्मा—द्वारा अनुभूत आवश्यकता का परिणाम है। नव-लेमार्कवाद के एक प्रमुख पुरोधा एडाल्फ वैग्नर ने लिखा 'लेमार्क की भाँति जो कोई भी आवश्यकता की अनुकूलन के स्रोत के रूप में कल्पना करता है, वह पूरी तरह आध्यात्मिक तरीके से सोचता है, चाहे उस की परिभाषा कितनी भी अस्पष्ट और भ्रान्तिपूर्ण क्यो न हो। इसे नकारा नहीं जा सकता कि आवश्यकता एक आत्मिक तत्त्व है और जो कोई सारे प्रपच को आवश्यकता में घटाता है, वह प्रकृति की आध्यात्मिक कल्पना करता है।'

लेमार्क ने स्वय जैवशक्तिवाद की प्रकृति को जैव और अजैव दो भागों में बाँटने वाली मध्यकालीन धारणा को खारिज कर दिया था। साथ ही वैज्ञानिक ज्ञान के प्रति कम आदर से मध्यकालीन धार्मिक दर्शन की ओर खुली वापसी की अनुमति नहीं मिल पाती। इसलिए नव-लेमार्कवादियों ने विज्ञान से नाता तोड़े बिना जैवशक्तिवाद को पुनर्जीवित करने का प्रयास किया। उन्होंने स्वय विज्ञान में ही जैव और अजैव के बीच

पुल-निर्माण की सामग्री पा लेने की घोषणा कर दी। उन्होंने यह तो स्वीकार किया कि जैव प्रकृति का भौतिक रासायनिक संघटन अजैव प्रकृति के संघटन से भिन्न नहीं है, लेकिन दावा किया कि प्रथम का संचालन उस के अपने नियमों से होता है जो एक अभौतिक जीवन सिद्धांत को पूर्वमान्य करते हैं।

नव-जैवशक्तिवाद का प्रथम प्रतिपादन शोपेनहावर द्वारा किया गया इस उद्देश्य के लिए वह पूरी तरह लमार्क के प्रमाण पर निर्भर था। उस ने जीवन के भौतिकवादी दृष्टिकोण की न केवल असत्य बल्कि निश्चयात्मक रूप से मूर्खतापूर्ण हास्यास्पदता का उच्चतम बिन्दु, निरी बकवास कह कर भर्त्सना की। शोपेनहावर की इच्छा को अंततः वैज्ञानिक लंगर मिल गया जब उस ने नव-जैवशक्तिवादी जीवन-शक्ति से अपना तादात्म्य किया। आत्मा के पुनर्जीवन के वैज्ञानिक आभासों के परिरक्षण के लिए उस ने इस बात का बलपूर्वक विरोध किया कि उस की प्रसिद्ध इच्छा से एकरूप जीवन- शक्ति कथित आत्मा से पूर्णतया भिन्न है। लेकिन ज्यों ही वह बताने लगता है कि वह क्या है, सारा भेद खुल जाता है। वह निम्नतम अजैव अवस्था से जीवन की उच्चतम अवस्था—मनुष्य—तक सम्पूर्ण प्रकृति में व्याप्त है। एक अंधेरा अचेतन संघर्ष एक अंधा धक्का। अजैव प्रकृति में वह गुरुत्वाकर्षण, विद्युत रासायनिक और भौतिक गुणधर्म आदि की तरह कार्य करती है। पौधों के विश्व में वह बाहरी उद्दीपन पर प्रतिक्रिया करती है फिर भी वह पूर्णतया अबोध रहती है। जन्तु और मनुष्य में इच्छा बोध का दीपक जलाती है और सहज प्रमातातता खो देती है। नव-लेमार्कवादियों की जीवन-शक्ति की तरह शोपेनहावर की इच्छा कोई भौतिक प्रपंच नहीं है। वह पराभौतिक विश्व से सम्बद्ध है। वह सम्पूर्ण प्रकृति का आधारतल है जिसे हम केवल अपने आंतरिक स्व में पा सकते हैं लेकिन साथ ही जो हमेशा अव्याख्येय रहती है। अपने सारे प्रतिवाद के बावजूद शोपेनहावर अपनी इच्छा में आत्मा की सभी पारम्परिक विशेषताएं और दुर्ग्राह्यता आरोपित करता है। अपने *नव जैवशक्तिवाद को लेमार्क के प्रमाण पर प्रतिपादित कर शोपेनहावर ने, दरअस्ल,* उस का दुरुपयोग ही किया।

मध्यकालीन धर्मशास्त्रियों से अपने को अलग करने के लिए वैज्ञानिक नव जैवशक्तिवादी अपने जीवन के सिद्धान्त को जैव विश्व तक ही सीमित नहीं रखते। उन के अनुसार *वह सम्पूर्ण प्रकृति में एकता के अन्तर्भूत सिद्धान्त की तरह व्याप्त है।*

एडोल्फ वैगनर अपने सम्प्रदाय की मान्यता का सारांश इस तरह प्रस्तुत करता है प्राचीन जैवशक्तिवाद की मान्यता थी कि प्रकृति के जैव और जड़ अंशों में बिल्कुल भिन्नता है। यन्त्रवादियों के लिए सम्पूर्ण प्रकृति की एकता एक स्वयंसिद्ध अवधारणा है जिसे उन के अनुसार प्रकृति के सांगोपांग अध्ययन से ही जाना जा सकता है। नव-जैवशक्तिवाद भी प्रकृति को एकता के रूप में देखता है लेकिन मानता है कि ऐसी एकात्मक अवधारणा प्रकृति के नयशिग दर्शन से ही सम्भव होती है। दूसरे शब्दों में

व्यष्टि रूप में आत्मा और समष्टि रूप मे ईश्वर नव-जैवशक्तिवाद के प्रस्थान-बिन्दु हैं। हमार समय में काई विवेकशोल व्यक्ति दर्शन का गम्भीरतापूर्वक नहीं लेगा यदि वह द्वैतवाद की पुराना समस्या का हल प्रस्तुत नहीं करता। वस्तुआ की एकात्मकता की धारणा की तलाश में दर्शन विज्ञान के भौतिकवादी प्रभाव में आ गया। नव-जैवशक्तिवाद दर्शन को इस अवाछनीय सहकार स मुक्त कराने के बहुसख्यक प्रयासों में से एक है। प्रकृति की एकात्मकता की धारणा के लिए वह सर्वात्मवाद में लौटने और उस से उत्पन्न रहस्यवाद और पूर्ण आस्था में सम्भावना का आविष्कार करता है।

यह स्वय एडोल्फ वैग्नर का मत है। इस सम्प्रदाय के कुछ अति उत्साही सदस्य अपने वैज्ञानिक अन्त करण के कारण कुछ अधिक दूर बह गये। उन्होने सघटन की एक विशेष स्थिति में जैव पदार्थ की यान्त्रिक क्रिया से बिल्कुल भिन्न जीवन के सिद्धान्त की व्याख्या की स्पष्ट असम्भाव्यता को हाथ में लेने का उद्यम किया। वैग्नर ने उन अति उत्साही लोगों को इन शब्दों में फटकार लगायी अध्यात्मवादी सिद्धान्त क्या है इस का कोई महत्त्व नहीं है। व्याख्या की शाश्वत चक को अब हमेशा के लिए समाप्त करना होगा—एक ऐसा आदत जिस ने बहुत भ्रम पैदा किया है। हमें इस बात की चिन्ता नहीं करनी चाहिए कि हम कभी प्रयोगात्मक और सैद्धान्तिक स्तर पर अध्यात्मवादी सिद्धान्त का निश्चित विश्लेषण कर पायेंगे अथवा नहीं। मनुष्य हर बात की व्याख्या नहीं कर सकता। और उस बात की तो कभी भी नहीं जिसे सभी व्याख्याओं की अविवाद्य कुजी के रूप में माना जाना है।

थॉमस हट मॉर्गन ने उत्परिवर्तन के सिद्धान्त के विकास में महत्त्वपूर्ण अवदान किया है जिस की सहायता से जीवविज्ञान अपने को दार्शनिक भौतिकवाद की अनुभववादी आधारभूमि के रूप में सुदृढ़ कर सका है। आनुवशिकी के दुर्बोध उपाणविक क्षेत्र में मॉर्गन के अन्वेषण ने जीवन की उत्पत्ति पर पडे रहस्य के आवरण को विच्छिन्न कर दिया है। वास्तव मे, मॉर्गन यह कहने की हद तक जाता है कि अपने सरलतम रूप में जीवन कार्बन के एक अणु पर चमकती हुई सूर्यकिरण के सिवा कुछ नहीं है।' तथापि, प्रयोगात्मक विज्ञान क क्षेत्र में अपना हा कान्तिकारा उपलब्धियों स निगमित तर्कसगत भौतिकवादी निष्कर्षों से वह व्यथित है। वह प्रयोगात्मक विज्ञान के क्षेत्र में आनुमानिक हस्तक्षेप (दि साइटिफिक बेसिस ऑफ इवोल्यूशन) का तीव्र प्रतिवाद करता है। वह वैज्ञानिक सिद्धान्ता से भौतिकवादी दार्शनिक निगमन नहीं करना चाहेगा। लेकिन आनुमानिक हस्तक्षेप का प्रतिवाद करते हुए भी मॉर्गन स्वय प्रत्यक्षवादी चिन्तन को छोड़ कर सिर्फ यह मानने के लिए आनुमानिकता में डूब जाता है कि प्रयोगात्मक विज्ञान में उस के अवदान से जैव विकास की प्रक्रिया में नियतत्ववाद के सिद्धान्त के उपयोग को समर्थन नहीं मिलता। मॉर्गन के दार्शनिक विचार निश्चय ही स्वय उस के द्वारा विवर्धित वैज्ञानिक सिद्धान्तों का खण्डन करते हैं और एक सुयोग्य आलोचक द्वारा उन्हें उचित हा प्रतिशोध के साथ उद्देश्यवाद कहा गया है।

अपने वैज्ञानिक आविष्कारों के भौतिकवादी निहितार्थों के विरोध के व्यर्थ प्रयत्न में मॉर्गन पूर्वस्थापित सुसंगतता व लाम्बनित्शाय अर्ध धर्मशास्त्रीय सिद्धांत का सहारा लेता है। एक अबोधगम्य दैवी व्यवस्था अर्थात् उद्देश्यवादी पूर्वनिश्चय के पक्ष में नियतत्वाद खारिज कर दिया जाता है। अनुभवगम्य व्याख्या मनमाना से रहस्यमय बना दी जाती है। प्रत्यक्ष ज्ञान अवांछित रहस्यवाद से भ्रमित किया जाता है। आस्था की वेदी पर विवेक की बलि चढ़ा दी जाती है।

एक वैज्ञानिक के रूप में क्लाइव लॉयड मॉर्गन भी इसी भौतिकवादी निष्कर्ष पर पहुंचता है कि जीवन का आविर्भाव अजैव पदार्थ से होता है। करीब पचहत्तर वर्ष पूर्व अजैव प्रकृति से जीवन की स्वत स्फूर्त उत्पत्ति के सिद्धान्त ने हक्सले हैकेल एवं अन्य वैज्ञानिकों को नाम लिये बगैर भौतिकवादी दर्शन का समर्थन करने के लिए बाध्य कर दिया था। उस के बाद, वह परिकल्पना अनुभवगम्य स्तर पर प्रामाणिक सिद्धान्त के रूप में स्थापित हो चुकी है। आज उस का भौतिकवादी निगमन अपरिहार्य है। उद्देश्यवाद को उस की अन्तिम शरणस्थली से निकाला जा चुका है। अपने वैज्ञानिक ज्ञान के अनिवार्य दार्शनिक निगमन का संगत और साहसी समर्थक होने की स्थिति में हमारे समय का कोई जीव-वैज्ञानिक हक्सले और हैकेल की तरह अज्ञेयवाद में शरण नहीं ले सकता। तथापि लॉयड मॉर्गन जैसा एक प्रमुख जीवविज्ञानी अपने आविष्कार के भौतिकवादी दार्शनिक निष्कर्ष से पलायन का निरर्थक प्रयत्न करता है।

प्रत्यक्ष ज्ञान के विध्वंसक आक्रमण के विरुद्ध अध्यात्मवाद को बचाने के लिए लॉयड मॉर्गन विचित्र ढंग से अन्तर्विरोधपूर्ण रवैया अपनाता है। वह मानता है कि जीवन अजैव पदार्थ से उत्पन्न होता है फिर भी वह मन को जीवन से अलग करता है और चेतना के जीवन से उत्पन्न होने की सम्भावना को मानने के लिए तैयार नहीं है। (दि एमर्जेन्स ऑफ नॉवेल्टी)

जीवन अब कोई रहस्य नहीं रह गया है, इसलिए मनुष्य के काल्पनिक आध्यात्मिक सार के लिए एक शरणस्थली पाने के उद्देश्य से चेतना को रहस्यमय बनाना ही होगा। लेकिन शरीरविज्ञान चेतना के ऐसे प्रयोजनमूलक रहस्यमयीकरण की अनुमति नहीं देता। वह निर्णायक रूप से सिद्ध करता है कि चेतना मस्तिष्क की वृत्ति है, और इसलिए वह शरीर से पूर्व और उस के बाहर अस्तित्वमान कोई आध्यात्मिक प्रपंच नहीं है। लॉयड-मॉर्गन निश्चित नहीं है कि विकास की प्रक्रिया से शरीर, चेतना और आत्मा से संघटित मनुष्य की उचित व्याख्या हो सकती है। कुछ प्रारम्भिक बीज की जानकारी विकास की प्रक्रिया के क्रम में मिल सकती है लेकिन उसे इस प्रक्रिया से व्याख्यायित नहीं किया जा सकता।

इस विषय में उद्देश्यपूर्वक भ्रम पैदा किया गया है ताकि वह उचित व्याख्या का विरोध करता लगे। जीवन की भौतिकता स्वीकृत है चेतना रहस्य का अधिष्ठान है। लेकिन इस अत्यन्त सरल तर्क में स्पष्ट तर्कदोष है। मनुष्य के घटकों का उल्लेख करते हुए

चेतना को आत्मा से अलग किया गया है इसलिए, चेतना न देह है न ही आत्मा। तब वह क्या है ? इस के अतिरिक्त मनुष्य को सघटित करने वाले तत्वों में जीवन को नहीं गिनाया गया है। अनुमान किया जा सकता है कि आत्मा और जीवन को एकरूप कर दिया गया है। यह एक निराशाजनक भ्रान्ति है। वैज्ञानिक चिन्तन की सुस्पष्टता की उपेक्षा की गयी है ताकि सवर्गों का अस्पष्ट निर्धारण कुछ प्रारम्भिक चीज के लिए जगह बना सके। लेकिन वह रहस्यमय अव्याख्येय तत्त्व क्या है जो न तो पदार्थ है, न चेतना और न ही आत्मा ? चेतना जैव-प्रक्रिया का हिस्सा नहीं है, लॉयड मॉर्गन का यह सुझाव शास्त्रीय तर्कणावाद का ध्यान दिलाता है।

चेतना और जीवन की एकता का धर्मशास्त्रीय सिद्धान्त सारत सही अरिस्टॉटलीय धारणा पर आधारित था कि जीवन और चेतना किसी एकात्म वस्तु के भिन्न प्रकटन हैं। अरस्तू की अवधारणा का वैज्ञानिक अर्थ ईसाई धर्म शास्त्र द्वारा उसे अंगीकार कर लिये जाने पर पराभौतिक अरण्य में खो गया। टॉमस एक्विनास ने अरस्तू के विचार का एक विकृत अर्थ में पुनर्प्रवचन किया। उस ने एक ही व्यक्ति में सारत भिन्न प्रकृति वाली एक से अधिक जीवनशक्तियों के अस्तित्व की असम्भवता पर बलपूर्वक आग्रह किया।

प्रथमत नामरूपवादियों, उन के बाद पुनर्जागरण के लोगों और अन्तत आधुनिक दर्शन के पिताओं (देकार्त और बेकन) ने चेतना को एक स्वतन्त्र शक्ति माना ताकि बुद्धि को उस धर्मशास्त्र के प्रभुत्व से मुक्त किया जा सके, जो सिखाता है कि जीवन ईश्वर की साँस है। उन दिनों में चेतना की स्वतन्त्रता की घोषणा, वैज्ञानिक स्तर पर गलत होते हुए भी, एक सामाजिक और सांस्कृतिक आवश्यकता थी। लेकिन एक बार जीवन के अध्यात्मवादी सिद्धान्त का असली रूप दिख जाने के बाद शास्त्रीय तर्कणावाद की उपयोगिता समाप्त हो गयी। धर्मशास्त्रीय अत्याचार के विरुद्ध मनुष्य का ऐतिहासिक विद्रोह पृथक्करण के लिए पर्याप्त विवेकशील नहीं था।

वैज्ञानिक दृष्टि से एक सही विचार के धर्मशास्त्रीय विकृति के विरुद्ध तर्कणावादी विद्रोह को द्वैतवाद द्वारा दूषित कर दिया गया। चेतना की स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष का एक नये धर्म—तर्कणावाद—में अध पतन हो गया। एक प्रभुसत्ता होने के लिए तर्कणा की उत्पत्ति अतिप्राकृतिक ही होनी होगी। जीवन और चेतना की भ्रामक द्वैतवादी अवधारणा केबेनिस के समय तक प्रचलित रही, जिस ने प्रदर्शित किया कि मनोविज्ञान शरीरविज्ञान का ही एक अभिन्न अंग है। तुलनात्मक शरीरविज्ञान ने जीवन और चेतना की उत्पत्ति अन्तत एकरूप भौतिक मूल में खोज निकाली। अनन्तर, स्पेन्सर के आगमिक मनोविज्ञान ने मानसिक प्रपंच की शरीरवैज्ञानिक व्याख्या की।

लॉयड मॉर्गन के पास द्वैतवाद में अपने पुन पतन के बचाव के लिए वह सफ़ाई भी नहीं है जिस ने शास्त्रीय तर्कणावाद के प्रणेताओं की समान भूल को उचित ठहराया था। वे तो धर्मशास्त्रवादी अत्याचार के विरुद्ध सघर्ष के उत्साह में भूल कर बैठे थे। उन के पास

उस ऐतिहासिक संघर्ष में साथ देने के लिए वैज्ञानिक ज्ञान उपलब्ध नहीं था। लायड मार्गन की भूल समान प्रतिकूल परिस्थिति के दबाव के कारण नहीं बल्कि जानबूझ कर रहस्यवादी अध्यात्मवाद—मध्यकालीन धर्मशास्त्र के एक आधुनिक रूप—के लिए एक बहाना खोजने के उद्देश्य से की गयी है।

लेकिन एक नष्ट उद्देश्य के बचाव की सिद्धि के लिए अपने पर थोप गये ऐसे निराधार पराभौतिक तर्कों के विरुद्ध एक वैज्ञानिक का अन्तःकरण विद्रोह कर ही बैठता है। इसलिए, लायड मार्गन दूसरों को आश्वस्त करने से अधिक स्वयं अपने वैज्ञानिक अन्तःकरण को शान्त करने के लिए आग्रह करता है कि सारी वास्तविक घटनाओं की विकास प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में व्याख्या करने और इस के बावजूद एक ब्रह्माण्डीय उद्देश्य में विश्वास रखने में कोई असंगति नहीं है। यह अन्ध आस्था में पुनःपतन है जिस की स्पष्टतः कोई आवश्यकता नहीं है। ऐसे किसी ब्रह्माण्डीय उद्देश्य को मान्यता देना आवश्यक नहीं है जिसे सत्यापित नहीं किया जा सकता हो। वह विकास प्रक्रिया को रहस्यात्मक ढंग से निर्देशित करने वाला कोई अव्याख्येय तत्त्व भी नहीं है। इसलिए उसे मानना पूर्णतया अनावश्यक है। फिर भी इसे एक धर्मसिद्धान्त बनाया जाना चाहिए। तथापि घेर लिये जाने पर आधुनिक अध्यात्मवाद अपने दार्शनिक आडम्बर को छोड़ कर विशुद्ध और सरल विश्वास की पुरातन पवित्रता में आ डटता है।

जीवन अजैव पदार्थ से उत्पन्न होता है और सभी वास्तविक घटनाएं विकास प्रक्रियाओं के सन्दर्भ में व्याख्येय हैं इन स्पष्टतया भौतिकवादी निष्कर्षों पर पहुंच कर लॉयड मार्गन बेचैन हो जाता है। जीवन को रहस्य के पारम्परिक पर्दे में रखने की दार्शनिक चिन्ता उसे अन्तर्विरोधपूर्ण वक्तव्य देने के लिए प्रेरित करती है।

जैविकीय ज्ञान की वर्तमान स्थिति में अभौतिक जैवशक्ति अथवा मनुष्य के आध्यात्मिक सार के लिए कोई गुंजाइश नहीं है, और तब अभौतिक आत्मा के साथ-साथ ईश्वर को भी जाना ही होगा। इस में अब कोई सन्देह नहीं है कि जैव पदार्थ के विकास के बहुत बाद तक भौतिक विश्व के रचनातन्त्र में कोई चेतना नहीं है। उस अवस्था में एक चेतन ब्रह्माण्डीय शक्ति की पूर्वधारणा पूरी तरह निर्मूल है। जीवन का स्वतःस्फूर्त प्रकटन अभी तक प्रयोगशाला में वास्तव में देखा या प्रदर्शित नहीं किया जा सका है। विज्ञान को अभी भी जैविक विकास की शृंखला के प्रारम्भ में ही एक और अप्राप्त कड़ी की समस्या का सामना करना पड़ सकता है। लेकिन अजैव पदार्थ से जीवन के अंकुरित होने की परिकल्पना विज्ञान की किसी अन्य परिकल्पना जितना ही युक्तियुक्त है। वास्तव में इस निर्णायक सवाल पर हमारा ज्ञान इतना पर्याप्त है कि हम इस अनुपेक्षणीय परिकल्पना को एक ऐसे सिद्धान्त के स्तर तक उठा सकें जो अभी प्रयोगात्मक स्तर पर सत्यापित न हो पाने पर भी तर्कानुसारेण प्रत्यक्ष है। वर्तमान स्थिति का बयान इस तरह किया जा सकता है यह बिल्कुल कल्पनीय है कि विश्व

की वर्तमान भौतिक प्रणाली ने अपने को मूलत अव्यवस्था में से व्यवस्थित किया और अजैव पदार्थ में एक बार व्यवस्था स्थापित हो जाने पर जैव और अजैव पदार्थ के बीच में कहीं स्थित रासायनिक यौगिक से जीवन यान्त्रिक ढंग से प्रकट हुआ। (जे बी एस हाल्डेन, साइन्स एण्ड ह्यूमन लाइफ)

सामान्यत यह कोई नयी अवधारणा नहीं है। स्वत स्फूर्त उत्पत्ति की परिकल्पना निश्चयात्मक तौर पर हक्सले और हैकेल द्वारा प्रस्तुत की गयी थी। लेकिन उस से भी पहले प्रकृतिवादी दार्शनिकों और जीवविज्ञानियों की एक पूरी परम्परा इस दिशा की ओर बढ़ती रही। 1819 ई में ही जर्मन प्रकृतिवादी आकेन ने जीवन मूल का सुराग आदिम श्लेष्मा में देखा था। उस के बाद शुल्ट्ज का प्रोटोप्लाज्म का सिद्धान्त और स्वान का कोशिका का आविष्कार आये। उन्नीसवीं शती के मध्य में पास्तुर के नेतृत्व में फ्रेंच अकेडेमी आफ साइन्स स्वत स्फूर्त उत्पत्ति की उत्कटतापूर्वक प्रतिरक्षा कर रहा था। हैकेल द्वारा मोनेरा के आविष्कार ने इस परिकल्पना को अनुभवसिद्ध ज्ञान का मजबूत आधार दे दिया। जैविक विकास के क्रम में मोनेरा का स्थान हाल ही में आविष्कृत जीवाणुभाजियों के बिल्कुल निकट है जिन्हें हाल्डेन एव अन्य समकालीन जीवविज्ञानी जैव और अजैव के बीच का सेतु मानते हैं।

बर्गसाँ भी अपने सारत उद्देश्यवादी 'सृजनात्मक विकास' के मत को आधुनिक जीववैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित करता है। लेकिन वह इस विचार को खारिज करता है कि जैव विकास पर्यावरण के साथ स्वचालित अनुकूलन का परिणाम है। वह मानता है कि विकास सोद्देश्य है। बर्गसाँ तर्क देता है कि शारीरिक उत्कृष्टता के दृष्टिकोण से जैव विकास को मानवीय स्तर प्राप्त करने से पहले ही रुक जाना चाहिए था। अपनी दलील के समर्थन में वह ध्यान दिलाता है कि अस्तित्व के लिए सघर्ष में अपने को बनाये रखने में कुछ उच्चतर पशु शारीरिक रूप में मनुष्य से बेहतर साधनवान हैं, और सवाल करता है यदि विकास की सचालक शक्ति अपने पर्यावरण के प्रति जीवधारियों का अनुकूलन है तो वह हाथी या बन्दर तक पहुंच कर ही थम क्यों नहीं गया? विकास वहाँ नहीं थमा और शारीरिक रूप से अवनतिशील मानव प्रजाति को उत्पन्न करने के लिए बढ़ता गया इस तथ्य के आधार पर बर्गसाँ का निष्कर्ष है कि विकास जीवन के उच्चतर रूपों की रचना करने की प्रवृत्ति की अभिव्यक्ति है।

यदि डार्विनवाद को पुराना मान कर एक ओर कर भी दिया जाय तब भी आधुनिक जैविकी के नव्यतर सिद्धान्त बर्गसाँ के सवाल की अप्रासगिकता को चुनौती देते हैं। उन सिद्धान्तों के अनुसार जैव विकास एक शुद्ध यन्त्रवादी प्रक्रिया है जिस में किसी बाहरी सचालक शक्ति के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। साथ ही कुछ अन्य तथ्यात्मक बिन्दु भी विचारणीय है। यह कहना सही नहीं है कि हाथी या बन्दर जैसे स्तनधारियों की तुलना में मनुष्य शारीरिक रूप से अवनतिशील है। जहाँ तक पहले का सवाल है, वह एक

मरता हुई प्रजाति है जो विशालता अथवा मांसपेशीय ताकत को शारीरिक उत्कृष्टता मानने के भ्रम का खण्डन है। बर्गसाँ की तरह यह मानना भी उतना ही गलत है कि बन्दर बीमारी से मनुष्यों की अपेक्षा अधिक असंक्राम्य हैं, और इसलिए शारीरिक तौर पर उत्कृष्ट प्रजाति हैं। नव्यतम प्रयोग (विशेषतया अमरिकी बन्दरों पर लैंड स्टाइनर और मिलर के प्रयोग) बताते हैं कि सत्य इस के बिल्कुल विपरीत है। उदाहरणार्थ गठिया विशिष्टत मानव शरीर की बीमारी है। स्तनधारियों में मानवाभ बन्दर ही ऐसी दूसरी प्रजाति है जिसे इस रोग का खतरा रहता है। इस का शरीरवैज्ञानिक कारण मूत्राम्ल का शरीर के लिए उपयोगी अन्य रसायनों में बदलने में असमर्थता है। मनुष्य और बन्दरों में यह असमर्थता समान है। यदि बन्दरों में अन्य बीमारियाँ नहीं पायी जातीं तो उस का कारण उन का असंक्राम्य होना नहीं है, केवल यह कि उन की व्याधियों के बारे में मनुष्य का ज्ञान सीमित है। उन्हें नैदानिक प्रेक्षण में नहीं रखा जाता। विशालता, मांसपेशीय ताकत या रोग से कथित असंक्राम्यता महत्तर बुद्धि से सन्तुलित हो जाती है, मनुष्य अनुकूलन के लिए अधिक योग्य है और इसलिए शारीरिक अस्तित्व के लिए संघर्ष में अधिक सफल है। शारीरिक दृष्टिकोण से भी कुल मिला कर मनुष्य विकास के सोपान क्रम में हाथी अथवा बन्दर से उच्चतर स्थान पर है।

बर्गसाँ स्वीकार करता है कि मनुष्य जीवन के उच्चतर स्तर का प्रतीक है। लेकिन वह यह नहीं स्पष्ट करता कि मानव प्राणी के माध्यम से अभिव्यक्त जीवन हाथी या बन्दर जैसे शारीरिक दृष्टि से उत्कृष्ट जैव रूपों से उच्चतर क्यों है। साफ है कि उत्कृष्ट बुद्धि मनुष्य को जैव विकास के सोपान में उच्चतर स्तर पर रखती है। इन्हीं सरल कारणों से जैव विकास में बाहरी प्रवृत्ति का अस्तित्व सिद्ध करने के लिए बर्गसाँ के तर्क व्यर्थ हो जाते हैं।

तथापि बर्गसाँ के तर्क में तथ्यात्मक भूलों को एक ओर कर देने पर भी यान्त्रिक अनुकूलन के सिद्धान्त को उस के द्वारा अस्वीकार करने पर सवाल उठाया जा सकता है जो ज्यादा नहीं तो उस के सवाल जितना तो प्रासंगिक है ही विकास के पीछे सक्रिय उद्देश्य को, जिसे दैवी अथवा पराभौतिक मूल का माना जाता है अपने को सिद्ध करने के लिए इतना चक्करदार, अपव्ययी रास्ता चुनने की क्या जरूरत थी? वह सीधे ही जीवन के उच्चतर स्तर की रचना क्यों नहीं कर सकता था? ऐसा लगता है कि सृष्टि का स्पष्ट धार्मिक सिद्धान्त बर्गसाँ के वैज्ञानिक दर्शन से अधिक तर्कसंगत है। अपने उद्देश्य की सिद्धि मे भौतिक माध्यम की जरूरत महसूस करने वाली दैवी अथवा पराभौतिक शक्ति वस्तुत पदार्थ से स्वतन्त्र नहीं हो सकती।

बर्गसाँ भौतिक अस्तित्व की समस्या को उस का निषेध करने की सरल युक्ति से हल करता है। वह मानता है कि जीवन की शक्ति या प्रवाह का ही भौतिक अस्तित्व है जिसे वह जीवनशक्ति कहता है जिसे जैव पदार्थ माना जाता है वह उस के अनुसार एक भ्रम है। बर्गसाँ के सम्पूर्ण दर्शन को समेटने वाले उस के प्रसिद्ध ग्रन्थ दि क्रिएटिव

इवाल्यूशन' का केन्द्रीय सिद्धान्त यही है। विश्व का समस्त प्रपंच—जैव और अजैव—उस सर्वव्यापी जीवनशक्ति की ही अभिव्यक्तियाँ हैं जो विश्व की आधार-सामग्री है। इस आधार-सामग्री की अभिव्यक्तियों की बहुरूपता की व्याख्या में बर्गसाँ उसे निरन्तर परिवर्तनशील स्थिति में मानता है। उसके अनुसार यह गुणधर्म ही जैव और अजैव विकास की प्रक्रिया का कारण है। इस प्रकार, भौतिक जगत की घटनाएं आध्यात्मिक वास्तविकता के अन्तर्निहित प्रवाह में क्षणभंगुर मात्र हैं। लेकिन क्या भौतिक विश्व की निरन्तर परिवर्तनशीलता के पीछे किसी विश्व-आत्मा की कल्पना करना अनिवार्य है? वे परिवर्तन स्वयं अपने में एक यांत्रिक प्रक्रिया की रचना करते हैं। इसलिए, जैव विकास में अन्तर्निहित किसी सहज प्रवृत्ति की धारणा की कल्पना पूर्णतया निर्मूल है। इस सन्दर्भ पूर्वानुमान के बिना भी विकास की प्रक्रिया पूरी तरह आत्म-व्याख्यात्मक है।

तथापि जब तक बुद्धि को जीवनशक्ति का गुण नहीं माना जाता तब तक बर्गसाँ के विचार को दर्शन की तरह नहीं तो काव्यात्मक कल्पना की तरह ही स्वीकार किया जा सकता है। उस स्थिति में, वैज्ञानिक समर्थन का नितान्त अभाव होगा। जीवन की प्रकृति कुछ भी हो, उस की उत्पत्ति के बारे में हमारा अज्ञान कितना भी अधिक हो, लेकिन भौतिक रासायनिक प्रक्रिया से स्वतः स्फूर्त उत्पत्ति के सिद्धान्त को सिद्ध न कर सकने को स्वीकार करते हुए भी कोई भी जीवविज्ञानी यह प्रमाणित नहीं कर सका कि जीवन के निम्नतम स्तर बुद्धि का कोई भी लक्षण प्रदर्शित करते हैं। यह तथ्य सुस्थापित तथ्य है कि बुद्धि या उद्देश्य जैव विकास के बहुत परवर्ती सोपान पर प्रकट होते हैं। इस स्थापित जीववैज्ञानिक तथ्य के विरुद्ध न जाते हुए बर्गसाँ अपनी जीवनशक्ति को बुद्धि का गुण नहीं देता, जो इस प्रकार एक आध्यात्मिक प्रत्यय बन जाती है। लेकिन यह शब्द के सामान्य अर्थों में प्रत्यय भी नहीं है। विकास की प्रक्रिया की सतह पर प्रकट होने वाले जीवन की योजना में परिवर्तन किसी बुद्धि द्वारा निर्देशित नहीं हैं, वे तो सहज वृत्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं। यह गम्भीर दलील के अभाव सूचक है। सहज वृत्ति बुद्धि की आदिम अवस्था मात्र है, दूसरी ओर, जिसे सामान्यतः सहजवृत्तिगत क्रियाएं कहते हैं, वह बुद्धि की स्वचालित सक्रियता का परिणाम है। किसी भी तरह सहज वृत्ति बुद्धि से पूर्णतया भिन्न नहीं है, जैसा कि बर्गसाँ का विचार है।

उस के अनुसार, सहज वृत्ति सत्य की अभिव्यक्ति है, जब कि बुद्धि भ्रम का स्रोत है। उस का दर्शन यह लगता है कि बच्चा पिता से अधिक बुद्धिमान है, मानवीय प्राणी की अपेक्षा जन्तु सत्य को अधिक स्पष्ट देखता है सभ्य मनुष्य की तुलना में जंगली व्यक्ति अधिक विश्वसनीय मार्गदर्शक हो सकता है। इसलिए हम बर्गसाँ का ही अनुसरण कर रहे होंगे यदि उस सरीखे अत्यन्त सभ्य मनुष्य के दार्शनिक मार्गदर्शन को अस्वीकार करते हुए अधिक विश्वसनीय बुद्धिमत्ता की तलाश में हम बुशमैन या हॉटेनटॉट जैसी जंगली जाति के किसी व्यक्ति के पास जाते हैं।

बुद्धिरहित सहज वृत्ति एक अन्तर्विरोधपूर्ण अवधारणा है। मनमाने से सहज वृत्ति को चेतना से अलग करके भी किन्तु वह चेतना को पूर्वमान्य करता है। अन्तिम विश्लेषण में बर्गसाँ की जीवनशक्ति ब्रह्माण्डीय चेतना का एक नया नाम है। यह एक भव्य तर्कजाल है। क्योंकि जिस प्रकार भौतिक विकास की प्रक्रियाओं में चेतना का साम्य उतना ही पाता है जितना उच्चतर रूपों को छोड़ कर जीवन में बुद्धि का। इस तर्कजाल से ... के लिए बर्गसाँ विज्ञान का त्याग करता और विश्व को एक रहस्यमय सत्ता की आत्माभिव्यक्ति की तरह देखता है। यह एक सामान्य मान्यता है। हेगल ने वैश्विक विकास को परम प्रत्यय द्वारा स्वयं को अनुभव करने की प्रक्रिया माना शेलिंग ने विश्व को ईश्वर का आत्मचिन्तन कहा। बर्गसाँ द्वारा छद्म वैज्ञानिक शब्दावली में पुनर्कथित इस दर्शन का सारांश यही है कि चेतना के बाहर कुछ भी अस्तित्वमान नहीं है। जिस प्रकार विश्व असीम के धुएँ के वैश्विक बादल में तैरते स्वप्न चित्रों की एक शृंखला है, उसी प्रकार प्रत्यय व्यक्ति का विश्व उस की चेतना का प्रक्षेपण है जो अपनी बारी में ब्रह्माण्डीय बादल के विस्तृत समुद्र में एक छोटा भंवर है।

जीवनशक्ति के विचार के साथ अपने तर्कजाल को पूरा क्रीड़ा का अवसर देने के लिए बर्गसाँ पदार्थ के वस्तुगत विचार को एक भ्रम मानकर आगे धकेल देता है। लेकिन कोई पूछ सकता है यह क्यों है कि स्वप्न-चित्रों की अतीन्द्रिय पूर्णता को बिगाड़ने के लिए यह भ्रम सभी ओर से घुस आता है? वह एक भ्रम हो सकता है लेकिन एक भ्रम की तरह वह वहाँ है। इसलिए वह एक वास्तविकता है। और इस रूप में वह व्याख्या माँगता है। इस बिन्दु पर बर्गसाँ बुद्धि को नाटक के शैतान की तरह प्रवेश देता है। विकास के क्रम में बुद्धि दृश्य में प्रकट होती है और भौतिक विश्व का भ्रम की रचना करती है।

अपनी अंतिम पुस्तक में बर्गसाँ लिखता है जो जीवन-ऊर्जा पदार्थ में प्रवहमान और उस के होने का कारण है, उसे हम प्रदत्त मानते हैं। (दि टू सोर्सेज ऑफ मोरल एण्ड रिलिजन) यह दावा किया जाता है कि यह पूर्वमान्यता हमारे जीववैज्ञानिक ज्ञान की सीमा में ही की जा सकती है। बर्गसाँ मानता है कि जीवविज्ञान हमें जीवन के प्रपंच से तो परिचित करवाता है लेकिन स्वयं जीवन से नहीं जिसे वह नया नाम 'जीवनशक्ति' देता है। प्रथमत जीवन और जीवन के प्रपंच का भेद मनमाना है निश्चय ही वह अवैज्ञानिक है। जीवन अपने प्रपंच का कुल योग है। दूसरे बर्गसाँ इस तथ्य की भी अवहेलना करता है कि प्रयोगात्मक स्तर पर जीवन को भौतिक रासायनिक संगठन की एक विशेष अवस्था में पदार्थ के प्रपंच के अतिरिक्त और कुछ सिद्ध नहीं किया जा सकता है। इस प्रभाव के पक्ष में कुछ समय से प्रमाण एकत्रित हो रहे हैं। सब से नये और प्रामाणिक को उद्धृत किया जा सकता है। हमारे समय के सब से महान रसायनज्ञ रिचर्ड विलस्टेटर ने 1933 ई में अमेरिकन कैमिकल सोसाइटी को सम्बोधित करते हुए घोषित किया कि जीवन निश्चय ही एक रासायनिक प्रक्रिया

है और एजाम्मों क अपने अध्ययन के उत्कृष्ट प्रतिपादन स इस निष्कर्ष को स्थापित किया जो उस के अनुसार जोवन के रहस्य के प्रकोष्ठ की कुजी' है।

सारे जाववैज्ञानिक ज्ञान क आधार को ही किनारे कर देने के बाद, बर्गसों जीवनशक्ति की प्रतिष्ठाहीन मान्यता को नये लेबुल और चतुर तर्कों के वस्त्रों में प्रस्तुत करता है। जीवनशक्ति को एक ऐसी सृजनात्मक शक्ति के रूप में देखा जाता है जो पदार्थ में व्याप्त है लेकिन अपन में अभौतिक है। यह रहस्यात्मक शक्ति मनुष्य में प्रेम के रूप में प्रकट होता है और प्रेम को ईश्वर से एकात्म घोषित किया गया है। प्रेम क्यों कि मनुष्य द्वारा अनुभूत भावना है इसलिए ईश्वर का अस्तित्व प्रयोगात्मक तौर पर सिद्ध है। इस सरल तर्क से बर्गसों इस आरोप को उलट देता है कि वह एक तदर्थ पूर्व-मान्यता क आधार पर धर्मशास्त्रीय पद्धति का अनुसरण कर रहा है। वह कहता है कि यदि हम ईश्वर क बारे में किसी निश्चित विचार से आरम्भ करे तो उस के अस्तित्व का सिद्ध करना, उस की प्रकृति को जानना सम्भव नहीं है।' कोई कुछ पूर्वमान्यता रखता है और उसे ही ईश्वर का प्रत्यय मानता है। तब वह निष्कर्ष निकालता है कि (ऐसे ईश्वर द्वारा निर्मित) विश्व का चरित्र कैसा होना चाहिए, और यदि विश्व का चरित्र वैसा नहीं है तो उस का निष्कर्ष होता है कि ईश्वर का अस्तित्व नहीं है।' इस पद्धति के विपरीत ईश्वर का अस्तित्व सिद्ध करने और उस की प्रकृति के प्रयोगसिद्ध ज्ञान के लिए बर्गसों निम्नलिखित पद्धति का निरूपण करता है

यह नहीं देख पाना कैसे सम्भव है कि यदि दर्शन अनुभव और तर्कबुद्धि का उत्पाद है तो उस विपरीत पद्धति का अनुसरण करना चाहिए उसे निश्चित करना चाहिए कि अनुभव हमें उस सत्ता के बारे में क्या सिखा सकता है जो मानवीय चेतना जैसी वास्तविकता के परे है और तब अनुभव की सम्भव सीख के आधार पर ईश्वर की प्रकृति क बारे में राय बनाना चाहिए। इस प्रकार, ईश्वर की प्रकृति तर्कबुद्धि के रूप में प्रकट होगी जिस के अस्तित्व में हमें विश्वास करना ही होगा। इस प्रकार ईश्वर के अस्तित्व या अनस्तित्व का निगमन उस की प्रकृति की मनमानी अवधारणा से नहीं होगा। इस बिन्दु पर सहमत होते ही तुम बिना किसी असुविधा के दैवी सर्वशक्तिमान के बारे में बोल सकोगे। रहस्यवादी की अभिव्यक्तियां ऐसी ही होती हैं, और इसीलिए हम दैवी अनुभवों के लिए उन की ओर देखते हैं। स्पष्टत , इसीलिए रहस्यवादी एक अवर्णनीय शक्ति को समझता है—सृजन और प्रेम की शक्ति जो सब कल्पना से परे चली जाती है।' (दि टू सोर्सेज ऑफ मोरल एण्ड रिलिजन')

इस तर्क का दोष सुस्पष्ट है। हम उस सत्ता का अनुभव कर ही कैसे सकते हैं जो मानवीय चेतना से परे है? जो अपनी प्रकृति में ही हमारी चेतना से परे है, वह स्पष्टत हमारे अनुभव की वस्तु कभी नहीं हो सकता। प्रस्ताव कुछ ऐसी चीज का अनुभव करने का है जिसे अनुभव किया ही नहीं जा सकता—कल्पना में भी नहीं। इस असंगत प्रस्ताव को इस सुझाव से संशोधित किया जाता है कि अवचेतन अथवा

अतिचेतन अनुभव जैसा कुछ है जो केवल परमानन्द की अवस्था में प्राप्य है। इस कोटि का अनुभव क्यों कि सामान्य नहा है, अत रहस्यवादा के विवरण पर ही विश्वास किया जाना है। अपने सारे तर्कजाल के बावजूद बर्गसाँ धर्मशास्त्र की उस पुराना पद्धति स छुटकारा पाने म सफल नहीं होता जिस की वह ईश्वर को अनुभव करने की वैज्ञानिक पद्धति के पक्ष में उपेक्षा करता लगता है। ईश्वर को अनुभव करने का विचार हा ईश्वर के अस्तित्व को पूर्वमान्य करता है। इस पूर्वमान्यता के बिना ईश्वर को अनुभव करने या उस के प्रयोगसिद्ध ज्ञान का विचार ही नहीं पैदा होता।

समकालान पश्चिमी दर्शन का यह श्रद्धेय वरिष्ठ अपनी बुद्धि और पटुता को धर्म और पराभौतिक नैतिकता के लिए ऐसे नये आधार की तलाश में एकाग्र करता है जो वैज्ञानिक ज्ञान का लज्जाजनक खण्डन न हो। वह पारम्परिक नैतिक मतवाद और धार्मिक सिद्धान्तों को एक विश्लेषणात्मक परीक्षण का विषय केवल यह सिद्ध करने के लिए बनाता है कि एक अवरुद्ध नैतिकता और गतिहीन धर्म' के बजाय क्रमश एक खुली नैतिकता और एक गत्यात्मक धर्म हैं और होने ही चाहिए। अवरुद्ध नैतिकता और गतिहीन धर्म मानवीय बुद्धि की रचना माने जाते हैं और सामाजिक स्थिरता के लिए मानवीय प्रकृति को नियन्त्रित करने क आवश्यक साधन सिद्ध हुए हैं। इस विचार में अन्तर्निहित अन्तर्विरोध को प्रकट करने के लिए इतना ही स्मरण दिलाना पर्याप्त है कि बर्गसाँ के अनुसार बुद्धि अज्ञान का स्रोत है। अब उस की दलील है कि सामाजिक स्थिरता के लिए बुद्धि अनिवार्य है जबकि वह यह भी मानता है कि सामाजिक स्थिरता के लिए मानव प्रकृति पर नियन्त्रण आवश्यक है। साधारण मरणधर्मा बाल की खाल निकालने की इस प्रक्रिया से चकरा जाता है। दार्शनिक सामाजिक स्थिरता के पक्ष में होता है या अराजकता के ? क्या वह बुद्धि द्वारा मानव प्रकृति पर नियन्त्रण का समर्थन करता है ? उस के तर्क का निहितार्थ यह है कि सामाजिक स्थिरता अज्ञान पर आधारित है। जब कोई धर्म और पराभौतिक दर्शन की पुनर्प्रतिष्ठा के लिए जीववैज्ञानिक ज्ञान के उपयोग का आग्रह करता है तो वह मनुष्य के दैनिक जीवन से सम्बन्धित महत्वपूर्ण सामाजिक और सांस्कृतिक मसलों को चकरा देने के लिए बाध्य हो जाता है।

अवरुद्ध नैतिकता और गतिहीन धर्म के विरुद्ध खुली नैतिकता' और गत्यात्मक धर्म स्वतन्त्रता के लिए सघर्ष की अभिव्यक्तियाँ हैं। वे सहजवृत्तिमूलक हैं वे बुद्धि से परे जाते हैं। अवचेतन निर्णायक कारक है। बर्गसाँ अनिच्छापूर्वक मानवीय अस्तित्व की योजना में बुद्धि को एक गौण स्थान देने के लिए राजी होता है। जीवनशक्ति के सिद्धान्त का प्रतिपादन इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए भारी बट्टा काट कर बुद्धि के स्थान निर्धारण क लिए किया गया है ताकि जीवन के रहस्यवादी आध्यात्मिक विचार को कोई चुनौती नहीं मिले।

तर्कणावाद और वैज्ञानिक ज्ञान ने धर्म के पुराने रूपों और उन पर आधारित मतवादी नैतिकता की जड़ काट दी है। उन्हें नये रूपों और परम नैतिकता की नया व्यवस्था

द्वारा पुनर्स्थापित करने के लिए बर्गसाँ धर्म को बुद्धि और तर्क से परे स्थापित करता है। उस जैव विकास में अन्तर्निहित सहजवृत्ति की तरह वर्णित किया गया है। लेकिन वृत्ति स्वय अव्याख्यायित रहती है और फलस्वरूप बर्गसाँ के नये धार्मिक दर्शन की पूरा सरचना हवाई महल बनाने जैसा है। वह एक मनमानी मान्यता है जिस का जीववैज्ञानिक ज्ञान की योजना में कोई स्थान नहीं है।

बर्गसाँ का तक है कि सारा मानवीय कर्म एक रहस्यमय शक्ति द्वारा निर्धारित होता है जो सम्पूर्ण भौतिक अस्तित्व में व्याप्त, लेकिन बुद्धि से परे है।' हम जीवन की मूलभूत विशेषताओं की ओर लौटें और जीवनशक्ति की अवधारणा की पूरी तरह अनुभवगम्य विशेषताओं पर ध्यान दें। क्या जीवनशक्ति को भौतिक-रासायनिक तत्त्वों मे घटाया जा सकता है ? इस सवाल का सकारात्मक उत्तर देने के लिए शरीरविज्ञानी मानता है कि शरीरविज्ञान की वृत्ति जीवनशक्ति के प्रपच में शामिल भौतिक और रासायनिक तत्त्वों की तलाश है, इस शोध पर कोई सीमा नहीं थोपी जानी चाहिए और शोध को इस प्रकार आगे बढ़ते रहना चाहिए जैसे उस का कोई अन्त ही नहीं है। इसी प्रकार हम आगे बढ़ सकते हैं। शरीरविज्ञानी एक पद्धति निरूपित करता है वह किसी तथ्य का निरूपण नहीं करता। विज्ञान जीवन की भौतिक-रासायनिक व्याख्या से हमेशा जितना ही दूर है। जीवनशक्ति की चर्चा करते समय इस बात की पुष्टि पहले कर लेनी चाहिए। (दि टू सोर्सेज ऑफ मोरल एण्ड रिलिजन)

यह मानते हुए कि जीवन में भौतिक-रासायनिक सयोजन से अलग कुछ अभौतिक है बर्गसाँ जीवन प्रपच के विकास के परीक्षण की ओर ध्यान देता है। उस का प्रस्थान-बिन्दु उस के सम्मुख जीवन के विकास में रहस्यमय इलाकों और अव्याख्येय प्रपच को खाल देता है। परिणामस्वरूप वह सकेत करता है कि डार्विनवाद की यह अपर्याप्तता' जीवनशक्ति के सिद्धान्त के समर्थन में एक और दलील है। लेकिन बर्गसाँ के अन्दर का वैज्ञानिक जीवविज्ञान को पूरी तरह ख़ारिज नहीं कर पाता। वह यह सिद्ध करना चाहता है कि जीवविज्ञान स्वय ही हमें उस रहस्यवादी शक्ति के आमने-सामने कर देता है 'जो हमारी बुद्धि को चकरा देती और हमें एक अव्याख्येय ईश्वर के अस्तित्व और क्रियाशीलता में विश्वास करने के लिए बाध्य कर देती है। यह स्वीकार करने के बाद कि जीवन निर्धारित दिशाओं में विकसित हुआ वह पूछता है क्या जीवन पर ये दिशाएं परिस्थितियों द्वारा आरोपित हैं या जीवन ने व परिस्थितियां विकसित कीं ? उत्तर में, यह आग्रह किया जाता है कि जैव विकास की नियमितता बाहरी कारणों की यान्त्रिक सक्रियता नहीं है, कि वह एक आन्तरिक प्रवृत्ति है जो उसे एक प्रदत्त दिशा की ओर निर्देशित करता है—उच्चतर से उच्चतर जटिलता की ओर।

जीववैज्ञानिक विकास की प्रक्रिया की यान्त्रिकता की हा उस की आन्तरिक प्रवृत्ति के रूप मे व्याख्या की जाती है। जीववैज्ञानिक विकास की प्रक्रियाएँ बाहरी कारणों से निर्धारित नहीं होती। वे स्वयपूर्ण हैं। अनुकूलन किसी बाहरी कारण की क्रियाशीलता

नहीं है। जीव अपने को पर्यावरण के अनुकूल बनाता है। प्रवृत्ति विकास की स्वयपूर्ण प्रक्रिया मे अन्तर्निहित है। इसलिए जावनशक्ति क सिद्धान्त का स्थापित करने क उद्देश्य से दिये गये बर्गसां के सार तर्क अप्रासंगिक और सारहीन हैं।

दार्शनिक स्वय यह मानने को बाध्य है कि ये सभा और अ य कई तर्क रहस्यमय शक्ति के अस्तित्व को प्रमाणित नहीं करते कि जावनशक्ति की अवधारणा 'जावन की काई बेहतर व्याख्या प्रस्तुत नहीं करती हम जावन के रहस्यमय चरित्र की ओर केवल ध्यान हा दिला रहे होते है। यदि जीवन को भौतिक रासायनिक तथ्यों में नहीं घटाया जा सकता तो वह पदार्थ के अतिरिक्त एक विशेष कारक के रूप में क्रियाशील होता है। इस प्रकार पदार्थ जावन के लिए एक साधन होने के साथ-साथ बाधा भी है।

एक तदर्थ, निराधार स्वाकार कर ला गया मान्यता फिर भी है यदि जावन को भौतिक-रासायनिक तथ्यों मे नहीं घटाया जा सकता। वह बर्गसां के तर्कों का कुलयोग है। स्पष्टतया यह जाववैज्ञानिक ज्ञान के आधार पर नव-जीवनशक्तिवाद को स्थापित करना नहीं है। यह एक पूर्वगृहात धारणा के लिए जीववैज्ञानिक ज्ञान को किनारे कर देना है।

बर्गसां के जीवनशक्ति के सिद्धान्त की परिणति जीवन की ऐसी अवधारणा के रूप में होती है जो देह और आत्मा के सम्बन्धों के बारे म हिन्दू विचार के अनुरूप है। देह अर्थात् भौतिक अस्तित्व अभौतिक आत्मा की मुक्ति के लिए आवश्यक है लेकिन साथ ही वह एक बन्धन भी है। बर्गसां विज्ञान को साफ साफ ख़ारिज नहीं करता लेकिन सम्भवत किसी असावधान क्षण मे वह तर्क करता है कि यदि जीवन को भौतिक-रासायनिक तथ्यों में नहीं घटाया जा सकता तो उस के कारण धर्मशास्त्राय 'वैज्ञानिक दर्शन को स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। वह आस्था की देवी के लिए एक नया मन्दिर बनाने के उद्देश्य से वैज्ञानिक ज्ञान की अपूर्णता से लाभ उठाता है।

शरारविज्ञान एक तथ्य को निरूपित नहीं करता बल्कि एक पद्धति का निरूपण करता है यह घोषणा करना इस बात को चुनौती देना है कि वैज्ञानिक सत्य जैसा कोई वस्तु है। यह इस बात पर आग्रह करना है कि जीववैज्ञानिक विकास के ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण भौतिक विश्व के रहस्यों का मानवाय बुद्धि द्वारा कभी भी भेदन नहीं किया जा सकता। यदि तर्क के लिए यह मान भा लें कि जावन प्रपच क बारे में हमारा वर्तमान ज्ञान निर्णायक नहीं है, तो भी इस का अर्थ यह नहीं निकलता कि शरीरवैज्ञानिक आविष्कार जीवन से सम्बन्धित तथ्य और उन के आधार पर प्रकृति की व्याख्या (यद्यपि अपूर्ण हा सहा) नहीं हैं। पहले अभौतिक शक्ति की क्रियाशीलता को प्रदत्त लक्षण अब निर्णायक रूप से विशुद्ध भौतिक रासायनिक सिद्ध हो गया है। इसलिए इस परिकल्पना में कतई कोई तर्क नहीं है कि एक रहस्यमय शक्ति जावन के उन गोचर दृश्यों के पाछे छिपी है जिन्हें अभी तक सन्तोषजनक ढग स भौतिक रासायनिक सिद्ध नहीं किया जा सका है।

विज्ञान जीवन के सारे प्रपंच की पूरी व्याख्या नहीं करता। यदि दर्शन बेहतर व्याख्या दे पाता तो उस के दम्भ का कोई औचित्य हो भी सकता था। लेकिन वह ऐसा नहीं कर पाता। बर्गसाँ स्वयं स्वीकार करता है कि स्थिति में जीवनशक्ति के हस्तक्षेप के द्वारा हम कोई बेहतर व्याख्या नहीं देते लेकिन हम जीवन की रहस्यमय क्रियाशीलता का संकेत करते हैं।' यह रहस्यीकरण का दर्शनशास्त्र है। आप इस आधार पर वैज्ञानिक सिद्धान्तों की वैधता पर सन्देह से आरम्भ करते हैं कि वे अपनी समस्याओं का पूरा समाधान नहीं करतीं। तर्कानुसारण आपको बेहतर व्याख्या देना चाहिए। जीवन वैसा नहीं है जैसा विज्ञान ने आविष्कृत किया है, इसे तभी माना जा सकता है जब सकारात्मक और निश्चयात्मक रूप से यह प्रमाणित किया जा सके कि वह कुछ और है। ऐसा नहीं किया जाता। केवल यह आग्रह किया जाता है कि जीवन कुछ भिन्न वस्तु है और हम उस की प्रकृति से अनभिज्ञ हैं। यदि हम उस से अनभिज्ञ हैं तो यह आग्रह कैसे कर सकते हैं कि वह वैसा नहीं है जैसा विज्ञान ने प्रमाणित किया है? ऐसा आग्रह हमारी भिज्ञता को पूर्वमान्य करता है। लेकिन प्रकृति की व्याख्या अध्यात्मवादी दर्शन का अंग नहीं है। उस का कार्य तो प्रकृति के रहस्यों और मानव बुद्धि के बीच एक अलंघ्य दीवार खड़ी करना है।

अध्याय दस

भौतिकवाद

बर्कलीय अथवा नव अफ्लातूनी सम्प्रदाय के कट्टर प्रत्ययवादियों के सिवा किसी आधुनिक दार्शनिक ने कथित बाह्य विश्व के अस्तित्व को ले कर कोई विवाद नहीं किया विवाद उसे जानने की सम्भावना को ले कर रहा। ज्ञान किस सीमा तक विषयगत वास्तविकता के अनुरूप हो सकता है? क्या ज्ञानमीमांसा का कोई तत्त्वमीमासीय सकेत है? आधुनिक दार्शनिक सिद्धान्तों का नकारात्मक प्रभाव केवल यही है कि उन्होंने ज्ञानमीमांसा के पुराने सवालों को प्रोत्साहित किया और फलस्वरूप दार्शनिक चिन्तन को पुन ह्यूमीय अज्ञेयवाद में धकेल दिया।

सत्तरहवीं शताब्दी के महान भौतिकवादी विचारक (हाब्स बेकन लॉक) जिन के विचार बर्कले के आक्रमण का लक्ष्य बने मानते थे—कि प्रत्यय बाहरी वस्तुओं के एन्द्रिय बिम्बों के अमूर्तन हैं और यह कि इसलिए बाहरी वस्तुएं बिलाशर्त ज्ञेय हैं।

कि वह प्रत्ययवाद की ओर उन्मुख लगे और बोध की इस तरह कि वह भौतिकवाद की ओर। मेरा विश्वास है कि जितना सामान्यत माना जाता है उस से पदार्थ (भूत) कम भौतिक है और मन कम मानसिक। (दि एनेलेसिस ऑफ मैटर)

रसेल द्वारा प्रस्तुत समस्या तब चकरा देने वाली रही होगी जब उस ने लिखा, लेकिन तब से भौतिकवादियों द्वारा यह आविष्कृत और तत्परतापूर्वक स्वीकृत कर लिया गया है कि वैज्ञानिक सिद्धान्त विशेष रूप से गणितीय भौतिकी के दुर्बोध समीकरण, बड़ी हद तक प्रत्यय' हैं—बुद्धि की भूमिका उन में इतनी है कि उन का तत्त्वमीमांसीय सन्दर्भ पृष्ठभूमि में चला जाता है। इसलिए रसेल द्वारा प्रस्तावित भौतिक सिद्धान्तों की प्रत्ययवादी व्याख्या की नहीं बल्कि इस तथ्य के स्वीकरण की आवश्यकता है कि वैज्ञानिक का दिमाग भी उस के द्वारा अन्वेष्य विश्व का एक अंश ही है।

ब्रोड ने इसका बेहतर वर्णन किया है कि दर्शन आधुनिक विज्ञान के आविष्कारों से किस तरह प्रभावित होता है सामान्य बोध का मूल विश्वास अस्पष्ट, अनगढ़ और अपरीक्षित था। बर्कले के तर्कों ने कई प्रकार की भिन्नताओं को पहचानने और इस वक्तव्य को अधिक स्पष्टता से परिभाषित करने के लिए बाध्य किया कि कुर्सियाँ और मेजें अदृष्ट ही अस्तित्व में रहती हैं। मूल अनगढ़ विश्वास कई विश्वासों से संघटित था। बर्कले के तर्क उन में से कुछ का खण्डन करते और कुछ पर गम्भीर सन्देह करते हैं लेकिन कुछ को बना रहने देते हैं। जो बने रहते हैं वे बाहरी वस्तुओं के स्वतन्त्र अस्तित्व में विश्वास बनाये रखने के लिए पर्याप्त हैं। बाहरी विश्व की वास्तविकता में यह विश्वास स्पष्टतर और सूक्ष्म है। वह अप्रासंगिक तथ्यों से पूरी तरह शुद्ध कर दिया गया है। (साइंटिफिक थॉट)

लेकिन इसी पुस्तक में एक दूसरे स्थान पर वह लिखता है पदार्थ का अभिनन्दन करना मेरे काम का हिस्सा नहीं है, और जब तक हम साफ कहते हैं कि हमारा अर्थ क्या है तब तक यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि हमारे पदों का इस्तेमाल शाब्दिक अर्थों में होता है या विकवैकीय अर्थों में। अभिरुचि ही यह तय करेगी कि हमारे द्वारा अंगीकृत सिद्धान्त पदार्थ की स्वीकृति है या उस का निषेध। अपनी अकादमीय तटस्थता के चलते दार्शनिक को कोई चिन्ता नहीं होगी यदि उस पर यह कहने का आरोप लगाया जाय कि पदार्थ पदार्थ नहीं है।' क्या यह लज्जित भौतिकवाद का विचित्र मामला नहीं है—एक विशेषण जिसे एंजेल्स ने अपने समय के अज्ञेयवाद और प्रत्ययवाद का वर्णन करने के लिए प्रयोग में लिया था? एक समकालीन ने इस अप्रतिबद्ध रुख का छद्म यथार्थवाद नामकरण किया है। (आर डब्ल्यू सेलर दि फिलॉसॉफि ऑफ फिजिकल रीअलिज्म)

यथार्थवाद के दो सम्प्रदाय—नया और आलोचनात्मक (दोनों में सारत नगण्य भेद है)—मानते हैं कि दर्शन का बुनियादी सवाल बाह्य सम्बन्ध है कि यह वस्तुओं

यह आग्रह करने में इस बात का असिद्ध करने की चिन्ता किये बगैर कि भौतिकवाद एक तत्त्वमीमासाय सिद्धान्त अर्थात् दर्शन क रूप में वैज्ञानिक साक्ष्य पर आधारित है स्टाउट मन और मानसिक जैसा अनुभव की पन्नावता का प्रयोग करता है। इस तरह वह अपना हा खण्डन करन लगता है मन का सम्बन्ध अनुभव से है लेकिन वहीं वह अनुभव से स्वतन्त्र भी है। केवल इसा प्रकार मन विदेह हो सकता है। और मन को विदेह होना हागा क्यों कि अन्यथा उस का वैश्वाकरण नहीं हा सकता। स्टाउट में भा मनोदैहिक समान्तरवाद उतना ही अधूरा है जितना देकार्त में। आधुनिक शास्त्राय प्रत्ययवाद के पिता द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त क अन्तर्विरोध तर्कानुसारेण भौतिकवाद की ओर ले गये। स्टाउट द्वारा दुबारा रग-रोगन कर प्रस्तुत किया गया यह अन्तर्विरोधपूर्ण सिद्धान्त अब टिक नहीं सकता—खास तौर पर जब हम मनोविज्ञान और भौतिकी क बारे में इतना अधिक जान गये हैं। इसलिए स्टाउट उत्साहपूर्ण विश्वास का सहारा लेता है। उस का विदेह मन धार्मिक दर्शन की पुराना विदेह आत्मा है। उसे विज्ञान से कतई कुछ लेना-देना नहीं है। एक सार्वभौमिक मन या वैश्विक चेतना को वैज्ञानिक तौर पर सिद्ध नहीं किया जा सकता। वह केवल विश्वास की वस्तु है।

मनोदैहिक समान्तरवाद अब कोई समस्या नहीं है, और तथ्य तो और भा कम। यह बात भौतिकवाद का स्पष्ट निषेध करने वाले समकालीन दार्शनिकों तक द्वारा स्वीकार की जाती है। उदाहरणार्थ एलेक्जेण्डर लिखता है मन एक ऐसी चीज है जिसे वस्तुओं की व्यवस्था में अपना उपयुक्त स्थान प्राप्त है। यदि इस मत को प्रकृतिवाद कहा जाता है तो मैं स्पिनोजा के साथ सन्तुष्ट हूँ, और दावा कर सकता हूँ कि उस के जैसा प्रकृतिवाद सभी मूल्यवान मानवीय चीजों को स्वीकार करता है। हर हाल में मैंने इस सिद्धान्त की अनुरूपता में चेतना का एक विशेष तरह के स्नायविक सगठन के गुण के रूप में वर्णन किया है। कार्यशीलता की विशेष स्थिति में और जानने की स्थिति में दो भागीदारों—एक तरफ मन अथवा देह और दूसरा तरफ वस्तु या लक्ष्य—की विशिष्टता को अकित करने के लिए मैं कहता हूँ कि मन अपने को अनुभव करता है और वस्तु पर चिन्तन किया जाता है। अनुभव स्वय मन के होने की एक स्थिति भी है और साथ ही वह जिस के प्रति वस्तु प्रकट है और इसलिए वह जानन की क्रिया है। इस से उलट किसी वस्तु को जानने में मैं स्वय को जानता हूँ आत्मचिन्तन के अर्थ में नहीं क्यों कि मैं वैसा नहीं कर रहा होता बल्कि इस अर्थ में कि मैं अपने ही इस अनुभव के माध्यम से जीता हूँ। (स्पेस टाइम एण्ड डीइटी)

आधुनिक वैज्ञानिक शोध दिखाता है कि बाह्य विश्व के हमारे ज्ञान में विषयिगत तत्त्व का बडा हिस्सा सम्मिलित है। कहा गया है कि यह आविष्कार भौतिकवाद का खण्डन करता है क्यों कि वह मन के अस्तित्व को अपने ही नियमों से शासित जाववैज्ञानिक विश्व की प्रक्रियाओं से अलग नहीं मानता। आधुनिक वैज्ञानिक शोध से समर्थित और पुनर्बलित भौतिकवाद का बुनियादी सिद्धान्त यह है कि विश्व—भौतिक और

जाववैज्ञानिक—का अस्तित्व विषयगत है वह स्वयपूर्ण और आत्म-व्याख्यायित है उस से बाहर और परे कुछ नहीं है उस की सत्ता और सम्भवन उसी में अन्तर्निहित नियमो से सचालित है, नियम न तो रहस्यमय हैं, न पराभौतिक और न ही केवल रूढ़िबद्ध, वे घटनाओं के सगत सम्बन्ध हैं, अपनी सभी अभिव्यक्तियों और साधित रूपों सहित चेतना उस का गुणधर्म है जो सघटन की एक निश्चित अवस्था में अस्तित्व को अनस्तित्व से भिन्न करती है। वैज्ञानिक ज्ञान की विभिन्न शाखाओं के इस दार्शनिक सामान्यीकरण को वस्तुवाद, प्रकृतिवाद अथवा यथार्थवाद या अन्य किसी भी नाम से पुकार लो जिसे आप भौतिकवाद पर वरीयता देते हो। उस से कोई मौलिक अन्तर नहीं पड़ेगा। केवल यही कि शब्द पदार्थ' का एक ऐतिहासिक अर्थ है वह दर्शन को धर्म में भ्रष्ट करने वाले भ्रमों और अन्धविश्वासो का वर्णन करता है। यदि वैज्ञानिक ज्ञान के तत्वमीमासीय सामान्यीकरण को निश्चित अर्थ वाला कोई नाम दिया जाता तो व्हाइटहेड जैसों के नव-अफलातूनी विचारों का भी निराकरण हो जाता।

तर्कबुद्धिवाद के नाम पर व्हाइटहेड सम्पूर्ण वास्तविकता के अधिक ठोस सर्वेक्षण की मांग करता है, और ऐसा करने में अन्त प्रज्ञा अथवा धार्मिक अनुभव को यथातथ्य ज्ञान से अधिक वैधता प्रदान कर दी जाती है। अपने भौतिकवादी दार्शनिक परिणामों सहित स्वय विज्ञान को खाई में फेंक दिया जाता है। वस्तु, दिक् काल, भौतिक रूपों के सक्रमण से सम्बन्धित विभिन्न नियमों को अन्तिम, जिद्दी तथ्यों के रूप में लिया जाता है, जिन से कोई छेड़ नहीं हो सकती।' (ए एन व्हाइटहेड साइन्स एण्ड दि मॉडर्न वर्ल्ड') दार्शनिक इस स्थिति को स्वीकार नहीं करते। वे तर्कबुद्धिवादी हैं। वे जिद्दी और अपरिवर्तनीय तथ्यों के पीछे जाने की कोशिश कर रहे हैं, वे सार्वभौम सिद्धान्तो की रोशनी में वस्तुओं के प्रवाह में प्रवेश कर रहे ब्योरों के पारस्परिक सन्दर्भ की व्याख्या करना चाहते हैं।' (वही)

यदि भौतिकवाद के वैज्ञानिक अनुमोदन को तर्क और विशुद्ध चिन्तन के आधार पर चुनौती दी जाता है तो उसे इस सवाल के साथ स्वीकार किया जा सकता है अमोघ और प्रमातीत सार्वभौम सिद्धान्तों' को जाना कैसे जायगा? सम्भवत, अन्त प्रज्ञा के माध्यम से वे तथ्य प्रकट हुए हैं। विश्वास को तर्कबुद्धिवाद की गरिमा तक उठाया जाता है।

व्हाइटहेड के तर्कबुद्धिवाद का अन्तिम सवर्ग भी एक सार्वभौम चेतना अथवा आत्मा है। मनोदैहिक समान्तरवाद की पुरानी समस्या को फिर प्रदर्शित किया जाता है। क्या आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान की सहायता से भौतिकवाद उसे हल कर सकता है? चेतना पदार्थ से कैसे निकलती है? क्या पदार्थ में अपने को हम जैसा वस्तुओं में सघटित करने की शक्ति है? भौतिकवाद को पुनर्वलित करने वाले आधुनिक विज्ञान के उत्तरों का साराश प्रस्तुत करने से पहले यह देखें कि उस के विरोधी इस समस्या को कैसे हल करते हैं।

आवश्यक्ता केवल इस बात की है कि बुद्धि पदार्थ की बनावट में गहरे से गहरे स्तरा तक प्रवेश करे और प्राकृतिक प्रक्रियाओं को एक चरित्र और निहितार्थ दे जो केवल भौतिक होने पर उन के साथ नहीं जुड सकते। प्रकृति मे सक्रिय मन अपने को कई रूपों म अभिव्यक्त कर सकता है। प्राकृतिक प्रक्रियाओं के क्रम मे एक विशेष स्थिति म अनुभवशील व्यक्तियो का प्रकटन इन में से एक रूप है। यदि यह विचार तर्कसगत विचार है तो भौतिकवाद के विरुद्ध तर्क वास्तव म ईश्वर तथा सार्वभौमिक अ र शाश्वत मन के अस्तित्व का समर्थक तर्क है। (जो एफ स्टाउट, माइण्ड एण्ड मैटर)

जो लोग इस दर्शन स सन्तुष्ट हाना चाहें वे अपने को प्रसन्न वर सकते हैं लेकिन स्पष्टत वे यह दावा नहीं कर सकते कि उन का दर्शन आधुनिक वैज्ञानिक शाध का परिणाम है।

जैविकी निश्चय ही दिखाती है कि पदार्थ में अपने को जटिल, चेतन, ज्ञानशील विचारशील प्राणियो में सघटित करने का सामर्थ्य है। यदि हम पदार्थ की जीवन को उत्पन्न करन की प्रक्रिया के बारे में यथातथ्य नहीं भा जानत तो कोई बुनियादी फर्क नहीं पडता। वह एक तत्वमामासात्मक नहीं बल्कि ज्ञानमीमासात्मक सवाल है। सामर्थ्य है बस हम यह नहीं जानते कि वह क्रियाशील कैसे होती है। हर हाल में, यह निस्सन्देह प्रमाणित है कि चेतना और मन (यदि विदेह मन की बेतुकी धारणा का छोड दिया जाय) जैव पदार्थ की वृत्तियाँ हैं। यह आविष्कार पदार्थ चेतना समस्या की जड ही काट देता है। भौतिकवाद नवीनता के प्रकटन का वर्जन नहीं करता। मन द्वारा भौतिक जगत के ज्ञान अथवा उस पर चिन्तन की सम्भावना मन और पदार्थ क बीच कारण-सम्बन्ध को पूर्वमान्य करती है उन दाना में कुछ ता उभयनिष्ठ होना हा चाहिए। यदि मन पदार्थ स बिल्कुल भिन्न हो तो कोई अ तर्वेशन सम्भव ही नहीं है। ज्ञान सम्भव है क्यों कि मन पदार्थ का परिणाम है। पदार्थ—अथवा आप चाहें तो अमानसिक अस्तित्व—का कोई अन्त नहीं है। वह बिल्कुल प्रदत्त है—अस्तित्व की तरह। इसलिए उस की उत्पत्ति का सवाल ही नहीं उठता। जाववैज्ञानिक विकास की प्रक्रिया में एक उच्च स्तर के बाद द्वैतवाद भौतिक एकत्व में विलीन हो जाता है।

भौतिकवाद इस अनुभवगम्य तथ्य को अस्वाकार नहीं करता कि विदेह आत्माओं के साथ उद्देश्य जुडा है वह विदेह आत्मा की धारणा के बेतुकेपन को अनावृत करता है और ऐसा वह वैज्ञानिक ज्ञान के साक्ष्य के आधार पर करता है। लेकिन उद्देश्य भौतिक शरीरों के माध्यम से क्रियाशील कोई परामौतिक शक्ति नहीं है। वह भौतिक अस्तित्व का पूर्ववर्ती नहीं है इस के विपरीत वह जीववैज्ञानिक विकास की प्रक्रिया के भौतिक गर्भाशय स उत्पन्न है। इस प्रकार आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान स पुनर्बलित भौतिकवाद न केवल मनोदैहिक समान्तरवाद की पुरानी समस्या को हल करता है बल्कि एक अन्य पुराने द्वन्द्व—तर्कबुद्धिवाद और प्रकृतिवाद अथवा स्वच्छन्दतावाद के द्वन्द्व—का भा निपटारा करता है। वह दोनों के सकारात्मक तत्त्वों में समन्वय स्थापित करता है।

अध्याय ग्यारह

ज्ञान का वैज्ञानिक सिद्धान्त

सामान्यत सही कारण-सिद्धान्त का और सटीक निरूपण पुराने यथार्थवादी मत 'प्रतिनिधि-प्रत्यय के समान स्पष्टीकरण के साथ मिल कर हमें ज्ञान का एक सिद्धान्त देता है जो आधुनिक वैज्ञानिक शोध का परिणाम है। इसे दूसरी तरह से कहें तो, जावविज्ञान और मनोविज्ञान के नवीनतम अवदानों से सम्पूरित आधुनिक भौतिक शोध हमें ज्ञान के अनुभववादी सिद्धान्त को उस तर्कदोष और अस्पष्टता से मुक्त करने में समर्थ बनाता है जिस के कारण उस की अधोगति विषयिनिष्ठवाद में हुई।

लॉक द्वारा निरूपित कारण सिद्धान्त ने सवेदन को बोध के साथ मिला दिया। परिणामस्वरूप, एक आर तो सवेदन को भ्रमपूर्वक मन की एक अवस्था समझ लिया गया और दूसरी आर मन अपने सम्मुख प्रस्तुत चित्रों का निष्क्रिय प्रेक्षक मात्र रह गया। आधुनिक वैज्ञानिक ज्ञान के उद्घाटक प्रकाश में सवेदन का विश्लेषण इस

गतिरोध से निकलने का रास्ता बताता है बाह्य उत्तेजन से सवेदन होते है जो मन द्वारा प्रेक्षित हैं। मन चेतना की एक जटिल अवस्था है जो कि स्वय सवदनों की प्रतिक्रिया है। इसलिए यह चकरा देने वाला सवाल उठता ही नहीं कि अमानसिक कारको द्वारा मन की अवस्थाएं कैसे सम्भव होती हैं और प्रतिनिधि प्रत्यय के विचार का ऐसे रूप में पुनर्कथन सम्भव हो जाता है जो प्रत्ययवाद की ओर न ले जाता हो। ज्ञान सम्भव है क्यों कि मन और पदार्थ मे कारण सम्बन्ध है।

प्रत्यय अनुभवजन्य वास्तविकताओं के प्रतिनिधि हैं। किसी भी वस्तु के मेरे प्रत्यय के लिए पहले मेरा उस वस्तु को जानना अनिवार्य है। लेकिन प्रत्यय मानसिक बिम्ब हैं वे वस्तुओं क ज्ञान क प्रतिनिधि हैं, स्वय वस्तुओ के नहीं। यदि किसी वस्तु के बारे में मेरी जानकारी सही नहीं है तो उस के बारे में मेरा प्रत्यय भी गलत होगा। फिर भी वह मेरे विकृत ज्ञान का प्रतिनिधि होगा। ज्ञान बोध से प्रसूत है जो शारीरिक सम्पर्कों की जैव प्रतिक्रिया है। हम वस्तुओं को जानते हैं, प्रत्ययो को नहीं। ज्ञान प्रत्ययों से सघटित नहीं है, इस के विपरीत, प्रत्यय ज्ञान से व्युत्पन्न हैं। इसी तरह प्रत्यय प्रतिनिधि हो सकते हैं और वैज्ञानिक प्रत्यय प्रतिनिधि हैं।

सवेदन का विश्लेषण और सज्ञान की प्रक्रिया में तत्प्रसूत अन्तर्दृष्टि ज्ञान और प्रत्ययों के बीच भ्रमवश कल्पित पारम्परिक सम्बन्धों को उलट देने में समर्थ बनाता है। प्रत्ययों की प्रातिनिधिकता सवेदन के साथ उन के तादात्म्य का परिणाम नहीं है। मानसिक और भौतिक के बीच अन्त क्रिया के परिणाम होने के कारण प्रत्यय मन की पहुंच का सीमा निर्धारण नहीं कर सकते। वे मानसिक क्रियाशीलता से उत्पन्न होते हैं, कारण कभी भी अपने परिणाम से सीमित नहीं किया जा सकता। बर्कले का प्रसिद्ध तर्क कि प्रत्यय केवल अपने सरीखे होते हैं अब उस उद्देश्य की पूर्ति नहीं करता जिस के लिए उसे प्रस्तुत किया गया था। प्रत्यय, निश्चय ही मानसिक बिम्ब होते हैं लेकिन मन केवल उन बिम्बों के चिन्तन तक सीमित नहीं है जो उस के सज्ञानात्मक क्रियाशीलता के उत्पादन हैं। साथ ही प्रत्यय बर्कले द्वारा उन के बारे में की गयी कल्पना से बिल्कुल भिन्न हैं। उस का तर्क प्रत्ययों के सवेदनों से भ्रान्त तादात्म्य पर आधारित था। इसलिए वह वास्तविक प्रत्ययों के लिए पूर्णतया अप्रासगिक है। क्यों कि प्रत्ययों का अस्तित्व ही ज्ञान पर निर्भर है, यह आग्रह स्पष्टतया बेतुका है कि हम केवल प्रत्ययों को जानते हैं।

इस प्रकार पुनर्कथित प्रतिनिधि प्रत्ययों का सिद्धान्त आधुनिक भौतिक शोध के साथ मेल में है जो विश्व और उस के सचालक नियमों के बारे में कुछ पूर्वमान्य धारणाओ के सशोधन के लिए बाध्य करता है। प्रतिनिधि हो सकने के लिए प्रत्ययों का ययातथ्य चीजों की सगति में होना आवश्यक है। यदि परमता की अनुपस्थिति अनुभव के विश्व की चारित्रिक विशिष्टता है तो उस के प्रत्ययों का भी वही चरित्र होगा। दूसरे शब्दों में उन्हें विश्व के ज्ञान के अनुसार परिवर्तनशील होना होगा। प्रत्ययों का प्रातिनिधिक चरित्र सापेक्ष है क्यों कि वह अनिवार्यत ज्ञान के विस्तार और यथातथ्यता का

सानुपातिक है। प्रत्येक प्रदत्त क्षण में, प्रत्यय चाजों को उसी प्रकार चिन्ति करते है जैसी हम उन्हें जानते है अथवा अधिक से अधिक उस क्षण हम जितना जानते हैं। प्रत्यय चाजों के नहीं, विषयों के अनुरूप होते हैं।

ज्ञान के एक वैज्ञानिक सिद्धान्त के निरूपण के लिए विषय की चीज या वस्तु से भिन्नता स्पष्ट कर दी जानी चाहिए। एक ज्ञानमीमासीय सवर्ग है ता अन्य तत्त्वमीमासीय। एक प्रक्षित वस्तु विषय है। तत्त्वमीमासीय दृष्टि मे दोना एक समान नहीं हैं। विषय सदैव वस्तुएँ हाते हैं अर्थात् उन का अस्तित्व वास्तविक होता है। सवेदन भी वस्तुएँ हैं यहाँ तक कि प्रत्यय मानस-बिम्ब हैं और बिम्ब एक स्थानिक अवधारणा है। लेकिन वस्तुएँ सदैव बोध अथवा ज्ञान के विषय नहीं होतीं। ज्ञानमीमासीय स्तर पर विषय हुए बिना भा उन का अस्तित्व हा सकता है, कुछ का होता भी है। खोजे जाने से पहले भी अमरिका का अस्तित्व था इसी प्रकार यूरेनस ग्रह का भी।

इसके अलावा मेरे ज्ञान का विषय सदैव एव अनिवार्यत सम्पूर्ण वस्तु नहीं होता जिस के साथ सम्पर्क से मुझ में सज्ञान की जैववृत्ति प्रेरित होती है। किसी वस्तु के बारे में ज्ञान की अपूर्णता उस की विषयनिष्ठता को प्रभावित नहीं करती। साथ ही विषयनिष्ठ ज्ञान के रूप में वह पूर्ण है क्यों कि वह वस्तु के वास्तव में प्रेक्षित अशों का अध्ययन करता है। जहाँ तक वस्तु का सम्बन्ध है, वह पूर्ण नहीं है, लेकिन जहाँ तक विषय का सम्बन्ध है, वह पूर्ण है। इसलिए वैज्ञानिक ज्ञान सदैव विषयनिष्ठ होता है यद्यपि उस से विकसित प्रत्यय समय-समय पर बदलते रह सकते हैं। विषयनिष्ठ ज्ञान पर आधारित होने के कारण सभा वैज्ञानिक प्रत्यय वास्तविकताओं के प्रतिनिधि होते हैं। यदि एक वस्तु वास्तविक है तो उस के अश भी वास्तविक होंगे। विषय और वस्तु (चीज) मे भेद कर पाने में असफलता अधिकाश ज्ञानमीमासीय सम्भ्रम का कारण रही है। विषय सदैव मन से सम्बद्ध होते हैं एक तरह से मनोनिर्भर होते हैं इस तथ्य पर आग्रह ने विषयनिष्ठता अर्थात् उन की तत्त्वमीमासीय वास्तविकता को अस्पष्ट किया है जो उन के वस्तुओं के अशों के प्रक्षित पक्षों से बनता है। लेकिन मनोनिर्भर होना मन की अवस्था होना नहीं है। तथापि, ज्ञान की प्रत्यक्ष अन्तर्वस्तु मन की अवस्थाएँ हैं यह प्रस्ताव इस झूठे तर्क के आधार पर किया जाता है कि मनोनिर्भर होने के कारण विषय निश्चय ही मन की अवस्थाएं होते हैं, इसलिए उन का अस्तित्व प्रेक्षित होने पर सम्भव होता है। इस प्रकार, बाह्य माध्यम से प्रेरित शारीरिक प्रक्रियाओं (सवेदनों) को मन की अवस्थाएँ मान लिया गया और अनुभववाद की अधोगति विषयिनिष्ठवाद मे हो गयी जो ज्ञान की सम्भावना का निषेध है।

इस भ्रान्ति से मुक्ति इस तथ्य के स्वीकार में है कि ज्ञानमीमासीय अर्थों में विषय मनोनिर्भर हैं, जबकि तत्त्वमीमासीय अर्थों में वे आत्मनिर्भर है। बोध वस्तुओं का बोध है वह बाह्य विश्व के ज्ञान की ओर ले जाता है यद्यपि जिसका प्रत्यक्ष बोध होता है वह सवेदन है।

जब आधुनिक विज्ञान दिखाता है कि सवेदन जैव विकास के इतिहास में मन से स्वतन्त्र और उस की पूर्ववर्ती वैद्युतिक रासायनिक प्रक्रियाएं मात्र नहीं बल्कि वास्तव म बाह्य विश्व कहे जाने वाले भौतिक सातत्यक मे घटनाएँ हैं, तो यह पूरी तरह स्पष्ट हा जाता है कि ज्ञान कैसे प्राप्त किया जाता है। ज्ञान सम्भव होता है क्यों कि मन चेतना की एक अत्यन्त विकसित और अत्यधिक जटिल स्थिति है जो सजीव प्राणियो (उच्चतर स्तर के) की बाह्य उद्दीपन पर प्रतिक्रिया का गुणधर्म है।

ज्ञान क एक निर्दोष सिद्धान्त का केन्द्राय बिन्दु यह है कि सज्ञान मन और विश्व के बाच एक सम्बन्ध है। ज्ञान एक साथ ही विषयनिष्ठ और विषयिनिष्ठ होता है। दोनों सम्बन्धी—ज्ञाता आत्म और ज्ञेय विश्व—समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। अपनी समस्या को हल करने के लिए ज्ञानमीमासा को मन और बाह्य विश्व दोनों की तत्त्वमीमासीय वास्तविकता स एक साथ प्रारम्भ करना चाहिए। ज्ञानमीमासा के लिए पूर्ववर्तिता का सवाल अप्रासगिक है। वह तत्त्वमीमासा का सवाल है। ज्ञानमीमासा को बस इन तथ्यों से निर्देशित होना चाहिए कि मन का अस्तित्व है और ज्ञान मन पर भी उतना ही निर्भर है जितना पदार्थ पर। यह प्रस्थान बिन्दु वैयक्तिक अथवा वैश्विक किसी भी स्तर पर मनोदैहिक समान्तरवाद की स्वीकृति नहीं है। मन वास्तविक है क्यों कि वह भौतिक विश्व का अग है। जावविज्ञान का यह निष्कर्ष हमें मन को एक अनुभवगम्य सवर्ग मानने में समर्थ बनाता है और ज्ञान के एक निर्दोष सिद्धान्त के निरूपण म निर्णायक योगदान करता है। यह ज्ञान का विषयनिष्ठ सिद्धान्त है क्यों कि स्वय विषयी को भी विषय बना लेता है। ज्ञान बाकी प्रकृति से अलग एक चेतन अस्तित्व को पूर्वमान्य करता है, लेकिन चेतन अस्तित्व एक भौतिक सातत्यक की पृष्ठभूमि से विकसित तथा उसा म सन्निहित है। 'बाह्य विश्व एक भ्रामक पद है। हम अपने अनुभव के विश्व के अभिन्न अग हैं। दूसरों का मन उन की देह की तरह ही मेरे बाह्य विश्व' से सम्बद्ध है जैसे मेरा मन उन के बाह्य विश्व से। आत्म सदैव एक देहबद्ध आत्म है। ज्ञाता मन को कभी भी एक विदेह आत्मा की तरह नहीं सोचा जा सकता। आत्म की अवधारणा में शारीरिक अस्तित्व सम्मिलित है। हमारे शरीर सवेदन के अग स्नायविक सस्थान मस्तिष्क, सम्पूर्ण सज्ञानात्मक तन्त्र भौतिक विश्व के हिस्से हैं। हम विश्व को बाहरी व्यक्ति की तरह नहीं देखते। हमारे अह हमारे मन हमारे विचार, हमारी बुद्धि सब बाह्य विश्व की भौतिक प्रक्रियाओं के साथ अन्तर्ग्रथित है। इस का आशय विचार और सत्ता के तादात्म्य के विवाद्य सिद्धान्त का आलोचनारहित अनुमोदन नहीं है। बिन्दु यह है कि चिन्तन (सभी प्रकार की मानसिक क्रियाशीलता) एक अत्यन्त उच्च स्तर पर जैव सत्ताओं की एक वृत्ति है। चिन्तन सत्ता का पूर्वमान्य करता है उस पर आश्रित है। सज्ञान के विषयिनिष्ठ तत्त्व भौतिक प्रकृति के सर्वसमावेशी तन्त्र के अश हैं। मन की सार्वभौमिकता को अनुभवगम्य स्तर पर स्थापित करने के आकाक्षियों तक द्वारा खारिज विदेह आत्मा की पराभौतिक अवधारणा का बहिष्कार और परिणामस्वरूप मनोदैहिक समान्तरवाद अनुभवगम्य

ज्ञान की विषयनिष्ठता के जामिन हैं। सारा ज्ञान सदैव अनुभवगम्य है—अवधारणात्मक चिन्तन गणितीय भौतिकी की अत्यन्त अमूर्त सैद्धान्तिक सरचना भी अपवाद नहीं है।

जीवन मन की प्रत्यक्ष आधारभूमि है। जीवन के अभाव में, मन का अस्तित्व सिद्ध नहीं किया जा सकता। जीवन के भौतिक प्रकृति का एक घटना व्यापार होने के कारण मन भी प्रकृति का अग है। हमारे अपने मनों की क्रियाशालताएँ भौतिक विश्व में घटनाएं हैं जो हमारे से बाहर हैं। बोध, ज्ञान, चिन्तन की क्रिया हमें अपने से परे ले जाती है। इसलिए आत्मनिरीक्षण अथवा आत्मचिन्तन तक शुद्ध विषयिनिष्ठ नहीं है। अत्यन्त अन्तरग मानसिक क्रिया तक का एक विषयनिष्ठ सन्दर्भ होता है।

जानना मन की एक क्रिया है, तथापि, ज्ञान चिन्तन से उतना ही एकरूप है जितना चिन्तन सत्ता से। चिन्तन मन का गुणधर्म है जब कि ज्ञान सम्पत्ति। यह मौलिक भेद है। एक अन्तर्निहित है एक अविच्छेद्य गुण, जबकि दूसरा अर्जित है—बाहर से। सोचना मन की प्रकृति में है लेकिन कोई विशेष ज्ञान उस के पास हो अथवा नहीं हो सकता है। ज्ञान मन द्वारा अधिकृत है, उस का अस्तित्व मन में है, पर वह मन का नहीं है। वह मन से बाहर अस्तित्वमान किसी विषय का ज्ञान है। इसलिए, तत्त्वमीमासीय दृष्टि से ज्ञान मन से एकरूप नहीं है।

लेकिन, एक मानसिक क्रिया के रूप में जानना विषयिनिष्ठ है, ज्ञान मन द्वारा अर्जित कुछ है और जो अर्जित है वह न तो अर्जक के साथ एकरूप हो सकता है, न उस से उत्पन्न है। ज्ञान अर्जित किया जाता है किया जाना है यह तथ्य सिद्ध करता है कि वह मन द्वारा बाह्य विश्व से स्वतन्त्र उत्पादित नहीं किया जाता। दूसरी ओर वह विषय के साथ एकरूप भी नहीं है। वह एक सम्बन्ध का परिणाम है और इसलिए दोनों सम्बद्ध पदों पर समान रूप से निर्भर हैं। लेकिन एक बार प्रकट हो जाने पर वह अपनी एक आस्तित्विक वास्तविकता प्राप्त कर लेता है। वैज्ञानिक मरता है उस के द्वारा प्राप्त प्रकृति का ज्ञान जीवित रहता है। दूसरी तरफ, वस्तुएं काल के गह्वर में समा जाती हैं, लेकिन उन के बारे में ज्ञान मानवीय विरासत बना रहता है—जब तक कि वह किसी अन्य वस्तु की तरह किसी प्रकार नष्ट न कर दिया जाय। ज्ञान एक वस्तु है—एक विशेष प्रकार की वस्तु लेकिन हर हाल में एक वस्तु। इसी कारण वह विषयनिष्ठ है। आनुवंशिकी में निर्भर किन्तु अस्तित्व में स्वयपूर्ण, और वृत्ति में सृजनात्मक। मानसिक प्रक्रिया का यह उत्पाद (मन से भिन्न) मन को बदल देता है। यह सम्भव नहीं है यदि मानसिक क्रिया स्वय मन तक ही सीमित हो यदि प्रत्यय ज्ञान की अन्तर्वस्तु हो। प्रत्यय मन का रूपान्तर कर देते हैं क्यों कि बाह्य विश्व के ज्ञान से उत्पन्न होने के कारण वे मानसिक उपकरण में वृद्धि करते हैं। मन जानने की जैव क्षमता है। ज्ञान जितना अधिक होगा, क्षमता उतनी ही तेज होगी। आदिम चेतना मन की आधारभूमि है साथ ही, वह ज्ञान का सरलतम रूप है, और अपने में वह एक निश्चित रासायनिक अवस्था में जैव

पदार्थ का यान्त्रिक गुणधर्म है। इस प्रकार सज्ञान की प्रक्रिया में किसी भी अभौतिक का प्रवेश नहीं है जब कि विभिन्न भौतिक सत्ताओं को समेटते हुए यह प्रक्रिया पूरी तरह भौतिक प्रकृति के यान्त्रिक नियमों से सचालित है।

साराशत सवेदन बाह्य विश्व के कारण उत्पन्न शारीरिक घटनाएँ हैं। कारण शृंखला में कोई क्रम भग नहीं है। अन्तिम विश्लेषण में, सब सवेदन स्पर्शजन्य हैं। जानना और बोध दोनों ही प्रत्यक्ष भौतिक सम्पर्क के आधार पर घटित होते हैं। कारण शृंखला सदैव भौतिक ही रहती है तार्किक नहीं। इसलिए विषयिनिष्ठता के सारे तर्क अप्रासगिक हैं। बाह्य कड़ी सवेदन और उन के बाह्य कारण के बीच सम्बन्ध भौतिक जगत की घटनाओं के बीच के कारण सम्बन्ध के ही समान है। वह प्रकट रूप में भौतिक नियमों से सचालित है। बीच की कड़ी सवेदन और मस्तिष्क के अगों में प्राकृतिक सम्बन्ध है। यहाँ हमारा सम्बन्ध उद्दीपक से प्रतिक्रिया के जैविक गुणधर्म से है। यह प्रक्रिया भौतिक नियमों के तहत वैद्युतिक-रासायनिक है। इस प्रकार बोध कोई रहस्य नहीं है। सवेदन के साथ बोध भी शरीर को समाविष्ट करते हुए भौतिक सातत्यक में एक घटना है। इस प्रकार, वह मन को बाह्य विश्व के साथ प्रत्यक्ष सम्बन्ध में रख देती है। यह कोई दो भिन्न गुणात्मक सत्ताओं में सम्बन्ध नहीं है। उद्दीपक से प्रतिक्रिया के जैव गुणधर्म में मन स्वय उत्पन्न होता है। इसलिए अन्तिम कडी सज्ञान भी एक भौतिक सम्बन्ध है।

तथापि सज्ञान बाह्य विश्व के सन्देशों का एक मौन ग्रहण या अकन नहीं है। सन्देश उद्दीपक हैं सज्ञान उन से बुद्धिमय प्रतिक्रिया है। बोध एक स्वचालित जैव प्रतिक्रिया है। सज्ञान एक व्याख्यात्मक निर्देशक चयनात्मक क्रिया है। ज्ञान बेतरतीब सन्देशों का ढेर मात्र नहीं है। वह सन्देश देने वाली वस्तुओं की प्रकृति का चरित्र निर्धारक निर्णय है। बोध हमें वस्तुओं के अस्तित्व के प्रति सचेत करता है सज्ञान उन की प्रकृति में अन्तर्दृष्टि है। उन्नतर अवयव-सस्थान (विकसित मस्तिष्क सहित) केवल पर्यावरण के प्रभावों को ग्रहण करने की ही नहीं बल्कि साथ ही उन्हें उस भौतिक वास्तविकता के एक सगत मानसिक बिम्ब में बुनने की क्षमता भी रखते हैं जिस के वे प्रतिनिधि हैं।

अनुभव ज्ञान की आधारभूमि है। लेकिन जानना एक शुद्ध अनुभव-प्रक्रिया ही नहीं है। वह बोधात्मक तथ्यों की एक तर्कसम्मत सुसगत व्यवस्था में अनुभवगम्य सामग्री का चयन व्याख्या वर्गीकरण और समन्वयन है। विश्व का यह अवधारणात्मक चित्र बनाने में मन केवल गृहीत सन्देशों अथवा चेतना में जो प्रदत्त है' उस से सीमित नहीं है। जैसा कि चित्रोपम शैली में कहा गया है मस्तिष्क हाथों और पाँवों से काम करता है साथ साथ दूसरे अगों से भी। तात्पर्य यह कि ज्ञान बोध के अपने बाहरी स्रोतों के एक समान और निरन्तर सन्दर्भ से उत्पन्न होता है। यह कई तरीकों से सम्भव होता है—दैनन्दिन जीवन के कार्य योजनाबद्ध प्रयोग विवेकपूर्ण प्रेक्षण स्मृति तर्क

चिन्तन और हमारे सचेत व्यवहार पर अचेतन का प्रभुत्व। बाह्य विश्व के रेशे हमारी चेतना में फैल जाते हैं।' मस्तिष्क रेशों के हमारी ओर के सिरों से संघटित होता है। इसलिए मस्तिष्क की प्रक्रियाओं का मूल—रेशों के साथ—विश्व के सुदूरतम भागों में उन के भौतिक कारणों में तलाशा जा सकता है। मानसिक क्रियाशीलताएँ प्रमस्तिष्कीय वृत्तियाँ हैं। मन सम्पूर्ण भौतिक विश्व के साथ कारण-सम्बन्ध से जुड़ा है। वह केवल शरीर में घटित होने वाली घटनाओं से परिसीमित नहीं है। उन घटनाओं की प्रतिक्रिया करते हुए वह अवधारणात्मक स्तर पर बाह्य विश्व के पास जाता है।

जानना तर्कानुसारेण प्रत्यक्ष अनुभव की अन्तर्वस्तु से बाहर की ओर भौतिक कारणता के क्रम की खोज है। बोध शुद्ध अनुभवगम्य अस्तित्व है। अवधारणाएँ सश्लेषणात्मक हैं। प्रथम स्वयमेव प्रदत्त है। दूसरी चेतन स्तर पर निर्मित हैं। ज्ञान बोधात्मक आधार-सामग्री के आलोचनात्मक परीक्षण, बुद्धिसगत समन्वयन और तार्किक निगमन के माध्यम से उपलब्ध वस्तुओं की प्रकृति में अन्तर्दृष्टि से उत्पन्न अवधारणात्मक विन्यास है।